पढ़ें और सीखें योजना

मिट्टी का मोल

डॉ. शिवगोपाल मिश्र

विभागीय सहयोग

रामदुलार शुक्ल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

अप्रैल 1988
वैशाख 1910
PD 10T-AKS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1988

सर्वाधिकार सुरक्षित

☐ प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकार्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।

☐ इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय, या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।

☐ इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

प्रकाशन सहयोग

सी.एन. राव : अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी : मुख्य संपादक
आशीष सिन्हा : संपादक
पूरनमलः सहायक सम्पादक
ओमप्रकाशः सम्पादन सहायक

यू॰प्रभाकर रावःमुख्य उत्पादन अधिकारी
चंद्र प्रकाश टंडन : कला अधिकारी
डी.साई प्रसाद : उत्पादन अधिकारी
रतीराम : उत्पादन सहायक

मूल्य : रू 7.45

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा लाइनोट्रॉन्, एम-70 मेन मार्केट, ग्रेटर कैलाश -2 नई दिल्ली 110048 में फोटोकम्पोजिंग होकर न्यू भारत ऑफसेट प्रिंटर्स, 125 सरोजिनी पार्क, शास्त्री नगर, दिल्ली-110031 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघ-शासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इसपर परिषद के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किंतु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद भी हमारे विद्यार्थियों की रुची स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती । इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बालकों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारम्भ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफ़ी है।

इस दृष्टि से परिषद ने बच्चों की पुस्तकों के लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत *"पढ़े और सीखें"* शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएँगी। हम आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र ही हिन्दी में हम निम्नलिखित विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

क. शिशुओं के लिए पुस्तकें

ख. कथा साहित्य

ग. जीवनियाँ

घ. देश-विदेश परिचय

ङ. सांस्कृतिक विषय

च. वैज्ञानिक विषय

छ. सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, वैज्ञानिकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भांति ही परिषद की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक *मिट्टी का मोल* के लेखन के लिए श्री शिवगोपाल मिश्र ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिन्दी में *"पढ़ें और सीखें"* पुस्तकमाला की यह योजना प्रो॰ अनिल विद्यालंकार के मार्ग-दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा॰ रामजन्म शर्मा, डा॰ सुरेश पांडेय, डा॰ हीरालाल बाछोतिया और डा॰ अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। इस योजना के संचालन में डा॰ बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय हैं।

इस योजना में विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्ग-दर्शन दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति और राजस्थान विश्वविद्यालय में वर्तमान प्रोफेसर-एमेरिटस डा॰ रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन के संयोजन और अंतिम संपादन आदि का दायित्व हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो॰ रामदुलार शुक्ल वहन कर रहे हैं।

मैं डा॰ रामचरण मेहरोत्रा को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इन पुस्तकों को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए मैं परिषद् के प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष और कार्यकर्ताओं, विशेषकर मुख्य उत्पादन अधिकारी श्री प्रभाकर राव

और मुख्य संपादक श्री प्रभाकर द्विवेदी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

पी.एल. मल्होत्रा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद

दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) की "पढ़ें और सीखें" योजना के अंतर्गत यह एक छोटा सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक डा.पी.एल. मल्होत्रा ने मुझे इस दिशा में "विज्ञान" के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने-माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए आकर्षित कर सकूँ क्योंकि कारण है कि खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने "आनंद" की एक झलक बच्चों तक पहुँचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। कहते तो हम सब हैं कि "बालक" राष्ट्र की सब से बहुमूल्य और महत्वपूर्ण निधि है. परन्तु मेरे लिए यह किंचित आश्चर्य और अधिक संतोष का अनुभव रहा है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्त वैज्ञानिक "बच्चों" के लिए ऐसा परिश्रम करने के लिए सहर्ष मान गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों के लिए हृदय से आभारी हूँ।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन द्वारा विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का एक अंग बन जाए।

यह योजना एन.सी.ई.आर.टी. के वर्तमान निदेशक डा. पी.एल. मल्होत्रा की प्रेरणा से प्रारंभ हुई है। मैं उन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूँ।

डा. शिवगोपाल मिश्र ने इस पुस्तक के लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के प्रो. रामदुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। प्रो. अनिल विद्यालंकार ''पढ़ें और सीखें'' संपूर्ण योजना के संचालक हैं। मैं इन दोनों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी के बाल्यकाल ही में वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही साथ उन्हें अपने देश की प्रगतियों एवं वैज्ञानिकों के कार्य की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

रामचरण मेहरोत्रा
अध्यक्ष
''पढ़े और सीखें योजना''
(विज्ञान)

अपनी बात

मिट्टी पर खेलना, मिट्टी पर घर बनाकर रहना, मिट्टी पर अन्न उपजाना और अन्त में मिट्टी में मिल जाना, यही तो जीवन है। मिट्टी से मनुष्य का घनिष्ठ संबंध रहा है, तभी कवि गाता है:

मिट्टी ओढौना, मिट्टी बिछौना मिट्टी दाना पानी है।
मिट्टी ही तन बदन हमारा यह सब ठीक कहानी है।।

लेकिन मिट्टी की शिकायत है, "शहरी लोग मुझे सदा से घृणा भरी दृष्टि से देखते आए हैं, मैं कहीं उनके पाँवों में लग न जाऊं और उनके कपड़ों को मैला न कर दूं।" (यहां तक कि पृथ्वीपुत्र किसान का बेटा भी आज ऐसा ही सोचने लगा है)। शहरों में घर का कोना कोना सीमेंट, पत्थर, मौज़ैक से पक्का कर दिया जाता है जिससे मिट्टी का नाम निशान भी न रहे। वहां न तो शौच के बाद हाथ धोने के लिए मिट्टी चाहिए, न गमलों में फूल उगाने के लिए मिट्टी चाहिए। ये सारे कार्य कृत्रिम साधनों से संपन्न कर लिए जाते हैं।

बेचारी मिट्टी उच्छ्वास भरती है "सचमुच आज मैं दूषित हो चुकी हूं। मेरी पवित्रता के उद्घोषक वे ही आर्यपुत्र मुझे आज गंदी तथा दूषित करने लगे हैं। मुझ तिरस्कृता को शहरों के सारे कूड़ा करकट, गंदे पनालों के जल, फैक्टरियों के प्रदूषित कचरे और नाभिकीय विस्फोटों की जहरीली धूलि से नहला दिया गया है। मैं भार से बोझिल हो रही हूं। त्राहि माम! कहां है मेरा उद्धारक?"

तभी आवाज आइ "माता घबराइए नहीं!" ये शब्द हैं उस मृदाविज्ञानी के, जिसने विगत 150 वर्षों से लगातार मिट्टी की सेवा की है। धन्य है यह सपूत।

सचमुच मृदा विज्ञान के विकास के साथ साथ मिट्टी की, या यों कहें कि धरती की पुकार सुन ली गई। जन सामान्य को इसकी जानकारी आवश्यक है। पांच वर्ष पूर्व मैंने "विज्ञान" के

लिए एक लेख लिखा था, इसी विचार को प्रकट करने के लिए। विश्वविद्यालय में 'मिट्टी' ही पढ़ाता हूं। मिट्टी की परिभाषा सदा ही मुझे मुग्ध करती आई है। 'मिट्टी', 'अ-मिट्टी' जैसे पारिभाषिक शब्द मेरी हृत्तंत्री को झंकृत करते रहे हैं। अब जब राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने बच्चों के लिए मुझसे कुछ लिखने के लिए कहा तो मैंने मिट्टी को ही चुना। किंतु जब लिखने बैठा तो लगा कि सचमुच कितना कठिन कार्य है मिट्टी की व्यथा को बता पाना। मैंने ''मिट्टी का मोल'' शीर्षक भी चुन लिया है। लगातार भाव उठते हैं, शीर्षक भी तो अटपटा है। 'बैल का मोल', 'घर का मोल', 'तरकारी का मोल' या कि 'मोल तोल' में मोल शब्द 'मूल्य' का द्योतक है। लेकिन 'माटी का मोल' जिस तरह प्रयुक्त होता है वह तो महत्वहीनता, सस्तेपन, निकृष्टता का सूचक होता है। मैं तो ''मिट्टी का मोल'' को मिट्टी के मूल्यांकन के रूप में ग्रहण करता हूं। लेकिन मिट्टी का मोल कैसे करूं? कैसे उसका मूल्य चुकाऊं? कैसे बताऊं उसके मोल को? मिट्टी अनमोल पदार्थ है। ऐसे ही विचार-मंथन से इस पुस्तक का कलेवर प्रसूत हुआ है। किमधिकम्।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

शिवगोपाल मिश्र

विषय क्रम

1

इस मिट्टी को नमन करो

अथर्ववेद के 'पृथिवी सूक्त' में भूमि को माता और मनुष्य को 'पृथिवी का पुत्र' कहा गया है। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः- भूमि माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ। ऋषियों-मुनियों के मन में भूमि, धरती, मिट्टी या पृथिवी (पृथ्वी) के प्रति जो अटूट लगाव प्रारंभ से रहा है उसी की अभिव्यक्ति 'सुजलां सुफलां शस्य श्यामलां' में भी पाई जाती है। 'जननी जन्म भूमिश्च' में भी जन्मभूमि (भारत भूमि) के माध्यम से भूमि की वंदना है। मनुष्य के हृदय में ऐसे विचार राष्ट्रीयता के द्योतक हैं। जिस समय मनुष्य का हृदय भूमि के साथ माता-पुत्र के प्रेम को पहचानता है उसी क्षण उसका मन अपनी मातृभूमि के लिए श्रद्धा से भर जाता है।

लेकिन कितनी विडंबना है कि मन में पृथ्वी या मिट्टी के लिए ऐसे उच्च विचार होते हुए भी आज के सभ्य मानव की दृष्टि पृथ्वी पर नहीं पड़ती। मनुष्य कितना विचित्र प्राणी है। उसके पांव तो पृथ्वी यानी मिट्टी पर टिके हैं किंतु उसकी दृष्टि कहीं दूर है। वह न तो धरती को छोड़ पा रहा है, न उससे जुड़ पा रहा है। आज धरती का संबंध केवल ग्रामीणों से जोड़ दिया गया है। वे हैं तो ''धरती के लाल'' या ''मिट्टी के सपूत'' पर ये दोनों प्रतीक हैं पिछड़ेपन के। धरती उनकी बपौती बन चुकी है। वे ही उसकी खबर लें। लेकिन वे तो अपनी ही रोए जा रहे हैं। वे कहे जा रहे हैं,'' यहां कोई न रहे, यहां पेट भर खाना भी नसीब नहीं हो पाता। इससे क्या मिलने वाला है? आज तक यह धरती किसी की नहीं हुई है।'' सदा यही हायतौबा मची रहती है। ''धौरा बैल

मर गया, खाद कहां से आए? लड़के बच्चे क्या मिट्टी खाकर जिएं? हे धरती माता! क्या यही हमारे भाग्य में बदा है?''

समय के साथ स्वर में कितना बदलाव आया है! किसान वेदों के पृथिवी सूक्तों' को भूल चुका है। वे सूक्त उसकी गुहार मात्र बन चुके हैं। लेकिन सारे किसान भी तो एक-जैसे नहीं है। इसी धरती को स्वर्ग बनाने वाले कर्मठ किसान घाघ, भड्डरी और खनादेवी की कहावतों के आधार पर खेती करते आए हैं और ऐसे ही किसान अर्वाचीन कृषि या यों कहें कि वैज्ञानिक कृषि का लाभ उठाते हैं; खाद, कीटनाशी, सिंचाई-जल, जुताई कटाई निराई के यंत्र सहज ही उपलब्ध हैं। उन्होंने धरती के मुखौटे को बदल डाला है। धरती पुरानी धरती नहीं रह गई है। उसने नई वेशभूषा धारण की है। अब वह मृदा वैज्ञानिकों की प्रयोगस्थली बन चुकी है। वह अर्वाचीन कृषि कर्मियों की कर्मस्थली बन चुकी है। उन्होंने 'मिट्टी के मोल' को पहचाना है।

यह मिट्टी हमारी जननी है किंतु प्रतीक रूप में। हमारी असली जननी तो हमारी तरह मानवी है। मिट्टी तो अन्न तथा शरण प्रदान करने के कारण हमारी जननी या 'धात्री' है और इसका **धरित्री** नाम धारण करने के ही कारण पड़ा है। कितने नाम हैं मिट्टी के? कितने रूपों में यह दिखती और व्यवहृत होती है? इसके जनक शैल तथा इसकी जननी प्रकृति किस तरह से इसे जन्म देते हैं, इसके रूप को सँवारते हैं?

हमारी कृषि प्रधान आर्य संस्कृति में मिट्टी का ही बोलबाला रहा है। कृषि के ही कारण आर्य, आर्य* (सर्वश्रेष्ठ) कहलाते थे। हमारे मन में, हमारे भावों में, हमारी संस्कृति में मिट्टी की गंध समाई हुई है। उसका 'मोल' हमें जानना ही होगा।

□□

---

* सुप्रसिद्ध भाषाविद मैक्समूलर ने **आर्य** शब्द को **अर्** धातु से व्युत्पन्न माना है। अर् धातु का अर्थ है भूमि का कर्षण। अतएव आर्य वह है जो हल चलाता हो, खेती करता हो। अंग्रेजी का अर्थ(earth) शब्द, जो हल से जोती मिट्टी के लिए प्रयुक्त होता है, वह भी अर् धातु से व्युत्पन्न है।

2

मिट्टी का जनक शैल

भारत भूमि का विस्तार उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम्-कन्याकुमारी तक और पूर्व में अरुणाचल से लेकर पश्चिम में राजस्थान के रेगिस्तान तक है। नक्शे में तो पर्वत, नदियाँ, घाटियाँ, समुद्र तथा रेगिस्तान अलग-अलग चिह्नों तथा रंगों से दर्शाए जाते हैं। लेकिन यदि कोई हवाई जहाज से पूरे धरातल का अवलोकन करे तो उसके वास्तविक स्वरूप का बोध हो सकेगा। वह कैसा लगेगा? उत्तर की हिमालय श्रृंखलाएं ऊंची-ऊंची हिममंडित चोटियाँ, उनके नीचे ऊंचे-ऊंचे वृक्ष, शिलाखण्ड कितना बीहड़ प्रदेश लगेगा? तराई प्रदेश में कंकड़ पत्थर, बालू के ढेर और जल की धाराएं। गंगा-सिंधु के मैदान में समतल भूमि, लहलहाते खेत। समुद्री किनारों पर बालू या रेत अथवा पंकिल भूमि, ताड़ खजूर के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष और विंध्याचल, कैमूर, शिवालिक की पहाड़ियाँ देश के बीचोबीच धनुषाकार लेटी हुई, कहीं वीरान तो कहीं जंगलों से आच्छादित। नगरों कस्बों को हम छोड़ रहे हैं।

सबसे मज़ेदार बात यह है कि यह पृथ्वी पहले सूर्य की ही तरह दहकते गलित पिंड के रूप में थी। कालांतर में इसका ऊपरी भाग भीतरी भाग की अपेक्षा अधिक ठंडा हो गया और फलतः वह अधिकाधिक कठोर बनता गया। यही अब भू-पर्पटी या पपड़ी (Earth Crust) के रूप में जाना जाता है। इस पपड़ी की गहराई अलग-अलग स्थानों में भिन्न-भिन्न है। कहीं-कहीं तो 15-20 किलोमीटर मोटी है। इस प्रकार समुद्र सतह से 8 किलोमीटर ऊंचे (यथा एवरेस्ट' चोटी) और 16 किलोमीटर गहरे (जापान के आसपास) स्थान भी पाए जाते हैं। कितनी ऊबड़.खाबड़ है यह पपड़ी? इस पपड़ी की तुलना नारंगी के ऊपर के छिलके से की जाती है।

यही पपड़ी धीरे-धीरे जल, वायु तथा ताप के प्रभाव से छिन्नभिन्न होने लगी। इसके छिन्नभिनन होने से मिट्टी बनी। लेकिन पपड़ी से मिट्टी बनने की विकास क्रिया अत्यन्त धीमो एंव जटिल है। पपड़ी के टूटने फूटने से जो पदार्थ बना. उसका संस्तरीकरण हूआ और इस तरह मिट्टी का जन्म हुआ। कई बार हम भूमि बनने की बात करते हैं। भूमि और मिट्टी में कोई अंतर नहीं है। मिट्टी का अपभ्रंश 'माटी' है। गंवई-गांव के लोग मिट्टी के लिए माटी, भुइयाँ, भुइं (भूमि शब्द का बिगड़ा रूप) आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं, किन्तु वैज्ञानिकजन इसे 'मृदा' शब्द से संबोधित करते हैं।

मिट्टी को द्रवीभूत अवस्था से वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने तक अनेक अवस्थाएं पार करनी पड़ीं। ये अवस्थाएं उस पदार्थ के विभिन्न रूप हैं जिसे भूविज्ञानी **शैल, शिला** या **चट्टान** (Rock) कहते हैं। पृथ्वी की रचना इन्हीं शैलों से हुई। ये ही शैल कालांतर मे मिट्टी के निर्माण में कारण बने। अतः ये शैल एक तरह से मिट्टी के जनक हैं। अंग्रेजी में इन शैलों को जनक (Parent Rocks) कहा जाता है। जननी क्यों नहीं? जननी तो प्रकृति है जिसका वर्णन अगले अध्याय में मिलेगा।

अतः शैल (Rocks) वे पदार्थ हैं जिनसे पृथ्वी की रचना हुई। शैल शब्द का प्रयोग पृथ्वी से प्राप्त किसी भी कठोर ठोस पदार्थ के लिए किया जाता है। ये शैल स्वयं में ऐसे विशिष्ट पदार्थों से निर्मित होते हैं जिन्हें खनिज (Minerals) कहा जाता है। इस तरह शैल खनिजों के समुच्चय हैं। शैलों की रचना इन्हीं खनिजों से हुई। खनिज एक ऐसा प्राकृतिक पदार्थ है जो सामान्यतया निष्क्रिय होता है, जिसका एक निश्चित रासायनिक संघटन होता है और उसकी एक निश्चित आणविक संरचना भी होती है जिसकी अभिव्यक्ति ज्यामितीय रूपों में होती है। वस्तुतः हम कहते हैं कि खनिज क्रिस्टलाकार होते हैं। ये क्रिस्टल ही खनिजों की विशिष्टताएं हैं। इस तरह प्रत्येक शैल एक या अधिक खनिजों का समुच्चय होता है, यानी प्रत्येक शैल में कम से कम एक खनिज अवश्य होता है और खनिजों की अधिकतम संख्या 1000 या 1500 तक हो सकती है। उदाहरणार्थ, चूना पत्थर नामक शैल में कैल्साइट नामक एकमात्र खनिज पाया जाता है, किन्तु ग्रेनाइट नामक शैल में कई खनिज रहते हैं! स्पष्ट है कि शैलों की जानकारी गूढ़ है और तत्संबंधी अध्ययन 'भौमिकी' (Geology) कहलाता है। जिस विज्ञान से शैल के खनिजों का अध्ययन

होता है वह 'खनिजिकी' या 'खनिज विज्ञान' (Mineralogy) कहलाता है। भू-रसायन (Geochemistry) के द्वारा खनिजों के निर्माण मे सहायक तत्वों की खोज एवं प्रकृति में उनके वितरण का अध्ययन किया जाता है। आज़कल 'मृदाविज्ञान' (Pedology) के अतर्गत 'मृदा रसायन' (Soil Chemistry) विषय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा मिट्टी की रासायनिक प्रकृति का पूरा अध्ययन संभव है।

इस समय ज्ञात तत्वों की संख्या 105 है। इनमें से कुछ प्रधान तत्वों के पारस्परिक संयोग से खनिजों की उत्पत्ति संभव हो सकी। उदाहरणार्थ, आक्सीजन (गैस रूप) तथा सिलिकन (ठोस) इन दो तत्वों के विभिन्न अनुपातों में संयोग से सिलिका या क्वार्ट्ज नामक खनिज की उत्पत्ति हुई।

यह पृथ्वी जलमण्डल (Hydrosphere) तथा वायुमण्डल (Atmosphere) से घिरी है। पृथ्वी को भूमंडल भी कहते हैं। भूमंडल की रचना का अत्यंत रोचक विवरण क्लार्क की पुस्तक Data of Geochemistry (1924) में दिया हुआ है। इसमें स्थल में प्राप्य तत्वों का सापेक्ष प्रतिशत इस प्रकार दिया हुआ है।

आक्सीजन 46.46, सिलिकन 27.61, एल्यूमीनियम 8.07, लोह 5.06, कैल्सियम 3.64, मैग्नीशियम 2.07, सोडियम 2.75, पोटैशियम 2.58, टाइटेनियम 0.62, हाइड्रोजन 0.14, फास्फोरस 0.12, मैंगनीज 0.09, कार्बन 0.09, गंधक 0.06, क्लोरीन 0.05, बेरियम 0.04, फ्लोरीन 0.03, स्ट्रांशियम 0.02।

इस प्रकार कुल अठाहरह तत्व बताए गए हैं जिनमें से 9 तत्व 1 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक और शेष 9 एक प्रतिशत से कम पाए जाते हैं। इनमें से भी आक्सीजन तथा सिलिकन मिलाकर 75 प्रतिशत और शेष 16 तत्व 24 प्रतिशत तक पृथ्वी में है। इस प्रकार ये अठारह तत्व कुल मिलाकर 99 प्रतिशत पृथ्वी की रचना करते हैं। शेष 1 प्रतिशत मे बाकी तत्व (87 तत्व) निहित है। कितनी विषमता है तत्वों की मात्रा में? स्पष्ट है कि इन तत्वों के संयोग से अनेक प्रकार के खनिज उत्पन्न हुए।

स्मरण रहे कि शैलों या खनिजों की रचना में मनुष्य का हाथ नहीं होता। यह प्रकृति की लीला है। जो प्रकृति शैलों को उत्पन्न करती है, वही मिट्टियों को भी जन्म देती है। माता जिस शिशु को जन्म देती है, कालांतर में वही जनक बनकर पुनः संतान उत्पन्न करता है। वस्तुतः स्थल या भूमिमण्डल के चारों ओर का वायुमण्डल तथा जलमण्डल प्रकृति के अवयव हैं। प्रकृति वह नटी है जो स्थलमण्डल को अपनी लीला भूमि बनाती है और मिट्टी को जन्म देती है।

यदि हम विभिन्न तत्वों को ईंटें मान लें और ऐसी ईंटों से हम 'भवन' का निर्माण करें तो इस तरह जो भवन बन कर तैयार होगा, वह 'खनिज' होगा। इन खनिज भवनों से मिलकर जिस 'नगर' का विकास होगा वह होगा 'शैल'। जिस प्रकार भवनों के बिना नगर की कल्पना या ईंटों के बिना भवन की कल्पना सम्भव नहीं ठीक उसी प्रकार खनिजों के बिना शैलों की और तत्वों के बिना खनिजों की कल्पना कर पाना असंभव है। शैलों में खनिज उसी प्रकार समाहित हैं जिस प्रकार नगर में भवन ।

लेकिन इस रूपक को आगे बढ़ाना चाहें तो क्या शैल रूपी नगरों से मिट्टी रूपी राजधानी बनी होगी? नहीं। रूपक इस रूप में आगे नहीं बढ़ेगा। शैलों से मिट्टी नहीं, पृथ्वी बनी होगी। मिट्टी तो इन शैलों के ध्वंस से बनेगी।

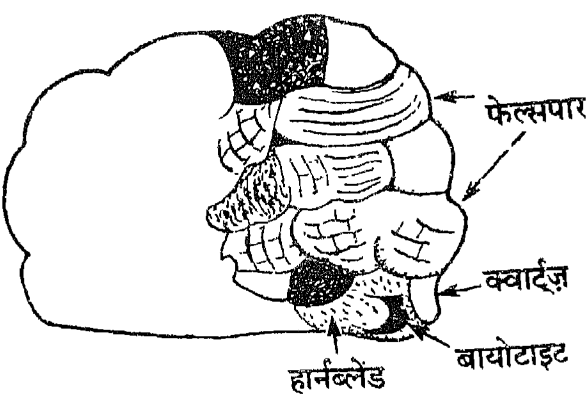
यदि हम शैलों को जनक मान लें तो खनिज पित्र्यसूत्र की तरह होंगे जिनसे मिट्टी जन्म ले सकेगी। ये ही पित्र्यसूत्र प्रकृति माता की कोख में कालांतर में मिट्टी का रूप धारण कर लेगे। शायद होता भी ऐसा ही है। मिट्टी निरी निर्जीव नहीं, वह सजीव है, उसमें न जाने कितने सूक्ष्म जीव शरण पाते हैं।

शैलों का वर्गीकरण उनकी उत्पत्ति एवं अवस्था के अनुसार किया जाता है। जिस प्रकार देवों में तीन देवता : ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश, प्रमुख हैं वैसे ही शैलों की तीन प्रमुख श्रेणियाँ हैं। ये तीनों देवता हमारे स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं; जनक रूप हैं; हमारे वंद्य हैं; मूर्ति रूपों में हम उनकी उपासना करते हैं। आइए इन तीन श्रेणियों के शैलों का परिचय प्राप्त करें।

ये तीन प्रकार के शैल हैं — आग्नेय (Igneous), अवसादी (Sedimentary) तथा कायांतरित (Metamorphic)। जैसा कि पहले कहा जा चुका है मूल द्रव्य द्रवीभूत था जो क्रमशः रूपांतरित होता गयाः द्रवीभूत पिण्ड,आग्नेय शैल, अवसादी शैल, कायान्तरित शैल।

आग्नेय शैल

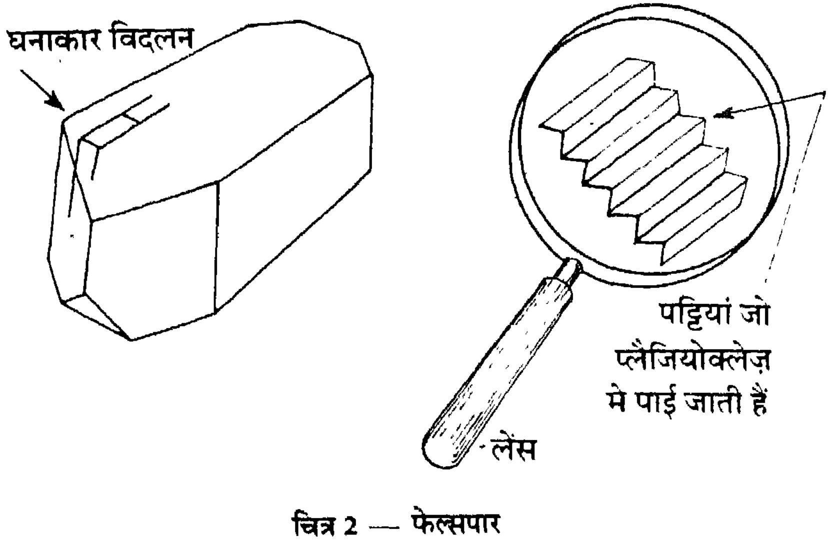
आग्नेय का अर्थ है अग्नि तथा ऊष्मा के फलस्वरूप उद्भूत। अतएव आग्नेय शैल वे हैं जो अत्यंत भीषण ऊष्मा के कारण बने। इस प्रकार ये शैल दहकते द्रवीभूत पिंड अर्थात् मैग्मा के ठंडा होने से बने। अतएव इन्हें 'मैग्मज' (Magmatic) शैल भी कहा जाता है। आज भी ज्वालामुखी के उद्गार से निकले लावा से ऐसे शैल उत्पन्न होते रहते हैं। मैग्मा के ठंडा होने के अनुसार इनमें कभी-कभी कण (grains) या दाने बनते हैं। ये ढोके के रूप में रहते हैं। इनमें स्तर या परते नहीं मिलतीं। ये शैल मुख्यतया सिलिकन के यौगिकों-सिलिकेटों से बने होते हैं। सिलिकेटों की मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है। लेकिन कम का अर्थ 35 प्रतिशत तक और ज्यादा का अर्थ 45-55 प्रतिशत तक है। यद्यपि यह अंतर अधिक नहीं लगता लेकिन इसके कारण जो शैल बनते हैं वे नितांत भिन्न होते हैं। अधिक सिलिकेट युक्त शैलों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण **ग्रेनाइट** शैल और कम सिलिकेट युक्त शैलों के उदाहरण हैं 'बेसाल्ट' तथा 'डाइबेस'। अनुमान है कि भू-पर्पटी का 95 प्रतिशत अंश इन्हीं आग्नेय शैलों से बना है।



चित्र 1 — ग्रेनाइट शैल

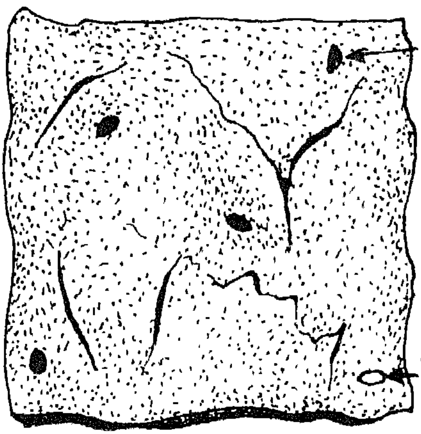
आग्नेय शैलों का रंग प्रायः हल्का और भार कम होता है, लेकिन ज्यों-ज्यों इनमें सिलिका की मात्रा घटती जाती है और लोहा, मैग्नीशियम या अन्य तत्वों का अनुपात बढ़ता जाता है त्यों-त्यों इनका रंग गहरा होता जाता है और भार मे भी वृद्धि होती जाती है। सिलिका की मात्रा कम होने से (बेसाल्ट) शैलों का अपक्षय शीघ्रता से होता है किंतु यदि सिलिका अधिक हो (यथा ग्रेनाइट) तो यह अपक्षय कठिनाई से होता है।

'ग्रेनाइट' हल्के रंग का, श्वेत से धूसर रंग का, आग्नेय शैल है। इसमे चार खनिजों के एक ही आकार के कण पाए जाते हैं। ये खनिज हैं — फेल्स्पार, क्वार्ट्ज, बायोटाइट तथा हार्नब्लेंड। किंतु इन चारों में से प्रथम दो का होना अनिवार्य है। चूंकि फेल्स्पार खनिज गाढ़े रंग का होता है, अतएव इसकी उपस्थिति से ग्रेनाइट का रंग गाढ़ा हो जाता है। यह गाढ़ापन लौह की उपस्थिति के कारण होता है। अधिकांश पर्वतों के भीतरी भाग ग्रेनाइट शैलों के बने होते हैं। ये शैल इमारती पत्थरों के रूप मे मंदिर, मस्ज़िद, क़िलों में प्रयुक्त होते हैं और कालांतर में ध्वस्त होकर मिट्टी बनाते हैं।



चित्र 2 — फेल्सपार

बेसाल्ट शैल काले रंग का भारी शैल है जिसमें महीन कण पाए जाते हैं। ये कम सिलिका वाले शैल हैं. इनमें प्रायः रंध्र पाए जाते हैं और हरे रंग के गड्ढे रहते हैं। इन शैलों का प्रधान खनिज 'आलिवीन' है। हमारे देश का दकन प्रायद्वीप ऐसे ही शैलों से युक्त है। अनुमान है कि इन शैलों का कुल क्षेत्रफल 5 लाख वर्गमील है और इनकी मोटाई कहीं-कहीं 3 हजार मीटर तक है।



चित्र 3 — बेसाल्ट शैल

गैब्रो नामक शैल मूर्तियों के लिए उत्तम होता है। इससे अंततोगत्वा लाल मिट्टी का जन्म होता है।

अवसादी शैल

पर्वतीय प्रदेशों में नदी-नद, झरनों का प्रवाह होता है। ध्यान देने पर स्पष्ट दिखता है — पहाड़ी टीला या श्रृंग के आसपास बड़ी-बड़ी शिलाएं, फिर छोटे छोटे प्रसतर खण्ड और तब दूर तक

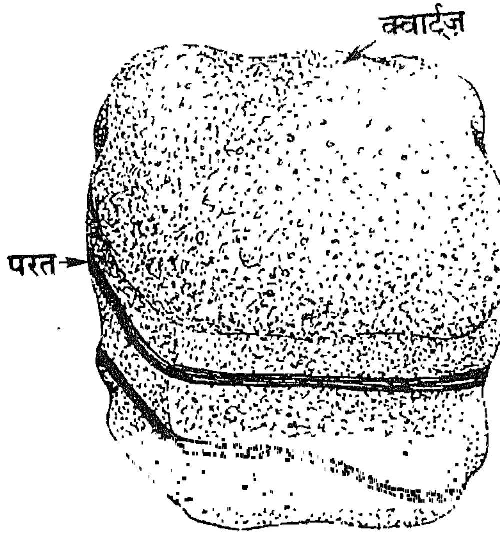
समतल भूमि। बड़ा विचित्र लगता है कि मीलों लंबे समतल मैदान कैसे बने होंगे? और ये पर्वत श्रेणियाँ क्यों मैदान नहीं बन गईं? ये कब तक मैदानों का रूप धारण कर लेंगी?

जलप्रवाह के कारण आग्नेय शैल के छोटे छोटे कण बहने लगते हैं। यही नहीं, जल में इन शैलों का जो अंश विलयित हो जाता है, वह इन शैलों को भेद कर नीचे बहता है, छिद्रों तथा रंध्रों में भरता है। कालांतर में जल द्वारा प्रवाहित अंश अवसाद के रूप में सूक्ष्म कणों के रूप में संचित होता रहता है। कभी आग्नेय शैलों के पाद प्रदेश में, तो कभी दूर दूर तक और कालांतर में यही पदार्थ अवसादी शैलों का रूप धारण कर लेता है। इस तरह ये शैल आग्नेय शैलों के कटने तथा उनके अपक्षय से बने होते हैं। मूल शैल तो आग्नेय शैल ही हैं। अवसादी शैल बाद की रचनाएँ हैं। शैल से शैल की रचना कितनी कुतूहलपूर्ण है!

अवसादी शैलों के निर्माण में अपरदन (Erosion) तथा पुनःनिक्षेपण, ये दो क्रियाएं अत्यंत सहायक हैं। आग्नेय शैलों से प्राप्त विलय पदार्थों का अंततोगत्वा क्रिस्टलीकरण होता है और अवसाद (कण, बजरी, धूलि, पंक) का कठोरीकरण, जिससे विभिन्न शैल बनते हैं। ये कण, पंक, धूलि नदियों द्वारा, ग्लैशियरों द्वारा या वायु द्वारा ले जाए जाते हैं। सारी नदियाँ प्रायः समुद्र में गिरती हैं और अपने मुहानों पर डेल्टा बनाती हैं जो अवसाद से युक्त होता है। अनुमान हैं कि समुद्रों के भीतर 320 किलोमीटर की दूरी तक अवसादी शैल मिलते हैं। चूंकि निक्षेपण एक क्रमिक घटना है अतः अवसाद का एक स्तर बनने पर उसके ऊपर दूसरा स्तर, दूसरे पर तीसरा, इस प्रकार स्तरीकरण चलता रहता है। निक्षेपण के दौरान ढेले, कंकड़, ग्रंथियाँ, स्पंज, घोंघे भी इन शैलों के अंग बन जाते हैं।

बलुआपत्थर, शैल, चूनापत्थर एवं कोयला अवसादी शैलों की मुख्य क़िस्में हैं। अनुमान है कि अवसादी शैल भूपर्पटी के समग्र शैल पिंड के 75 प्रतिशत की रचना करते हैं। (आग्नेय शैलों की भी प्रधानता का पीछे उल्लेख आया है किंतु ये ही बाद में अवसादी शैल बन जाते हैं।) अवसादी शैलों की प्रकृति अवश्य ही विलक्षण होगी।

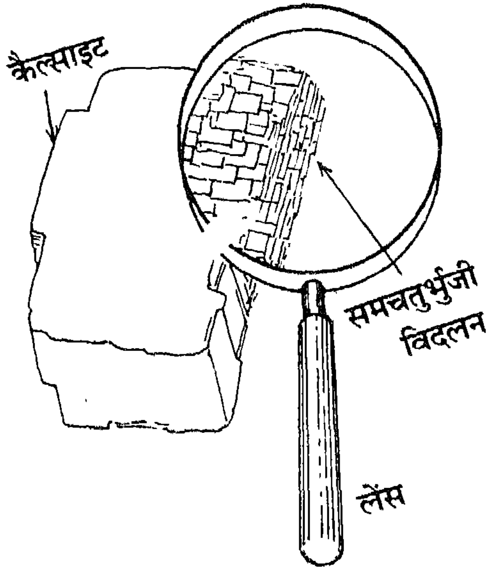
बलुआपत्थर का रंग श्वेत भूरा होता है किंतु संयोजक पदार्थों की प्रकृति के अनुसार रंग बदलता रहता है। यदि लौह ऑक्साइड रहे तो लाल, पीला, भूरा रंग प्राप्त होगा किंतु यदि बीच में कहीं खड़िया मिट्टी आ गई तो रंग न केवल श्वेत होगा वरन् अम्ल में इसकी विलेयता बढ़ेगी। बलुआ पत्थर इमारतों के बनाने में प्रयुक्त होता है। पीछे ग्रेनाइट की चर्चा हो चुकी है। बलुआ



चित्र 4 — बलुआ पत्थर

पत्थर में क्वार्ट्ज के अतिरिक्त कोई अन्य खनिज नहीं होता। यह खनिज अत्यंत अपक्षयरोधी है किंतु यदि बीच-बीच में संयोजक पदार्थ होते हैं तो उनके अपक्षीण होते ही सारा पत्थर चूर-चूर हो जाता है।

चूनापत्थर श्वेत रंग का होता है। इसमें मुख्यतः कैल्साइट तथा गौणतः डोलामाइट, ये दो खनिज पाए जाते हैं। यदि कुछ अपद्रव्य मिले होते हैं तो रंग कालिमा लिए होता है। इसी चूने पत्थर को जला करके चूना प्राप्त किया जाता है। यह शैल दो प्रकार से उत्पन्न होता है: रासायनिक क्रियाओं से तथा जैव-प्रक्रम से। नदियों या समुद्रों के जल में कैल्सियम कार्बोनेट का अवक्षेपण न होकर जब इसका अवशोषण जल के विविध प्राणियों जैसे, ऐल्गी तथा घोंघों द्वारा होता है तो इन प्राणियों की मृत्यु होने पर ये शैल बनते है। खड़िया या चाक देखने में स्वच्छ लगती है। यह है कैल्सियम कार्बोनेट, किंतु यदि सूक्ष्मदर्शी से देखा जाए तो पता चलेगा कि इसमें ऐल्गी तथा



चित्र 5 — चूना पत्थर

घोंघे के अंश दिख रहे हैं। अनेक गुफाएं चूना पत्थर के कटने से बनी हैं। मूंगे के द्वीपों में भी ये ही शैल होते हैं।

शेल (शैल से भिन्न शब्द किंतु एक शैल किस्म) मुलायम, काले रंग का निर्बल शैल है। इसमें परत के परत अनेक मृत्तिका खनिज पाए जाते हैं, जिसमें से केओलिनाइट प्रमुख है। इस शैल का उपयोग इमारती पत्थर के रूप में नहीं हो सकता।

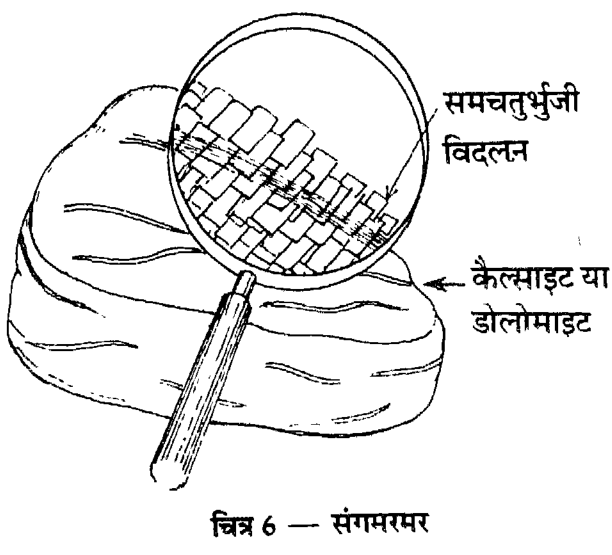
कोयले को प्रायः खनिज कह दिया जाता है किंतु यह ऐसा शैल है जिसमें खनिज होते ही नही। वास्तव में कोयले की उत्पति वनस्पतियों से होती है। प्राय : बड़े बड़े जंगल दल दलों में दब कर पहले पीट कोयले को और तब कठोर कोयले को जन्म देते हैं। इसमें अनेक तत्व रहते हैं किंतु खनिज रूप में नहीं। इस काले कलूटे अवसादी शैल को गृहणियाँ ईंधन के रूप में काम में लाती हैं। यह गुण अन्य किसी शैल में नहीं पाया जाता। (थोरियम तथा यूरेनियम युक्त खनिजों तथा शैलों से नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त हो सकती है किंतु इतनी सरलता से नहीं।)

कायांतरित शैल

आग्नेय तथा अवसादी दोनों ही शैलों से कायातरित शैलों की उत्पत्ति संभव है। अधिक ताप तथा दाब के अंतर्गत आग्नेय तथा अवसादी शैल जिन नवीन शैलों को जन्म देते है वे कायांतरित शैल कहलाते है। परिवर्तनों के फलस्वरूप मूल शैलों का रूप इतना बदल जाता है कि उनमें जीव अवशेष नहीं रह पाते। उदाहरणार्थ, वह चूना पत्थर जिसमे जीव अवशेषो की बात कही गई थी, ताप एव दाब से कैल्साइट शैल में परिवर्तित हो जाता है जो कि संगमरमर पत्थर है।

चूना पत्थर ——→ कायान्तरण ——→ कैल्साइट

संगमरमर (कैल्साइट) की तरह नाइस, शिस्ट, स्लेट, क्वार्ट्ज़ाइट कायांतरित शैलों के अन्य विभेद हैं। इन सबके अपक्षय से अनेक मिट्टियों का जन्म हुआ है। विशेषतया दक्षिणी पठार में कायांतरित शैलों से काली मिट्टियों का जन्म उल्लेखनीय है। काली मिट्टियों के ही पड़ोस में लाल या पीली मिट्टियाँ भी मिल जाती है। एक ही जनक शैल से रंग रंग की संतानें!



चित्र 6 — संगमरमर

स्लेट से हम सबों का बचपन से लगाव रहता है। स्कूलों मे चाहे अक्षर ज्ञान के लिए प्रयुक्त स्लेट हो या श्यामपट्ट, होता है स्लेट ही का बना। यह शैल, शैल पर शैल की क्रिया मे बना होता है। स्लेट का रंग धूसर से काले तक होता है। इसमें पाए जाने वाले कण इतने सूक्ष्म होते हैं कि आखों से नहीं दिखते। यह अत्यंत कठोर होता है।

ताजमहल जिस संगमरमर पत्थर से बना है वह चूना पत्थर पर जल, ऊष्मा तथा दाब के भीषण प्रभाव से कायांतरित होकर बनता है। प्रकृति में प्रायः श्वेत निष्कलंक पत्थर इसलिए प्राप्त नहीं होते क्योंकि पिंड बनते समय अशुद्धियाँ मिल जाती हैं। यह शैल अत्यंत चिकना होता है। इसमे पाया जानेवाला एकमात्र खनिज कैल्साइट है। इस पत्थर की गुराई, चिकनाई ने शाहजहां को प्रेरित किया था कि वह अपनी प्रेयसी मुमताज़ बेगम की स्मृति के लिए इसी संगमरमर का मकबरा बनवाए । उसने काले पत्थर को जान बूझ कर नहीं चुना था। किंतु उसे यह कहां ज्ञात *था कि 400 वर्ष बाद वायु इतनी प्रदूषित हो जाएगी कि वह निष्कलंक संगमरमर को कलंकित* कर देगी। तनिक भी अम्लता से यह पत्थर गलने लगता है। मथुरा के तेल शोधक कारखाने से आज ताजमहल के लिए गम्भीर ख़तरा उत्पन्न हो गया है। पत्थर या संगदिल के भीतर भी इतनी मृदुता ! सचमुच शाहजहां ने कोमल हृदय के अनुरूप कोमल पत्थर चुना था। आगरा मे बलुआ पत्थर, संगमरमर, स्लेट सभी तरह के शैलों के मकबरे हैं किंतु उनका स्थायित्व पृथक पृथक होगा।

□□

3

प्रकृति मां की गोद में मिट्टी

प्रकृति माता के गर्भ में पाऐ जाने वाले नाना प्रकार के खनिजों से बना शैल रूपी जनक मिट्टी तनया को जन्म देता है। प्रकृति दीर्घ काल तक गर्भ में धारण करके उसे बड़ा बनाती है। मिट्टी का प्रसव अनेक व्यथाओं-पीड़ाओं की कथा है (जिसे अपक्षय कहा जाता है)। एक बार पिंड में प्राण का संचार हो तभी तो मिट्टी जन्मे! किन्तु यह हो कैसे? कौन हिलाए डुलाए इस पिंड को? प्रकृति की सहचरियाँ आगे आती हैं, वे ही प्रकृति को चंचल बनाती हैं अन्यथा प्रकृति निरुपाय दिखती है।

शैल जिस भांति रूपांतरित होते हैं उसमें अपक्षय का हाथ होता है। शैलों तथा शैलकर खनिजों के विखंडन तथा विघटन की क्रिया ही अपक्षय है। विखंडन में ताप, वायु जैसी सहचारी शक्तियाँ कार्यशील रहती हैं। इनके फलस्वरूप बड़े-बड़े शैल पहले खण्डों में, फिर छोटे-छोटे आकारों में, तब बालू जितने छोटे कणों में परिवर्तित होते हैं लेकिन तब तक आकार के अतिरिक्त गुणों में कोई अंतर नहीं आता।

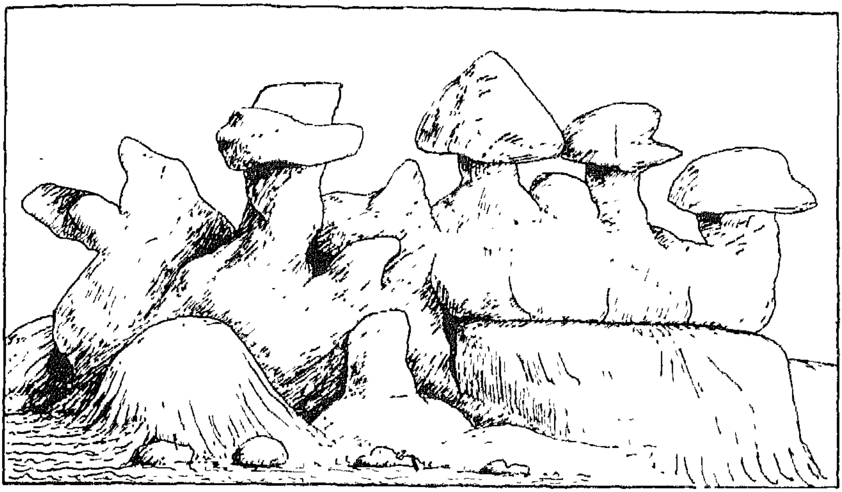
सूर्य की गर्मी (ऊष्मा) पाकर शैलों के आकार-प्रकार में प्रसार (वृद्धि) होता है किंतु रात में एकाएक ताप घट जाने से इन शैलों में संकुचन होता है। चूंकि शैल ऊष्मा के सुचालक नहीं होते, अतएव इस प्रकार दिन तथा रात के तापांतर से शैलों में दरारें पड़ने लगती हैं और वे टूट जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि सूर्य की दिशा में खुली हुई पर्वतों की चट्टानें सूर्य से दूर रहने वाली दिशा की चट्टानों की अपेक्षा अधिक टूटती है। इस प्रकार दक्षिणमुखी चट्टानें उत्तरमुखी चट्टानों से अधिक टूटती हैं। रेगिस्तानी इलाकों एवं बर्फ से ढके शीत प्रदेशों में ऐसे तापांतरों की संभावना अधिक होती है।

जब डाइनामाइट (बारूद) नहीं था तो पहाड़ी भागों की बड़ी-बड़ी शिलाओं को किसान अपने खेतों में लाकर गरम करते थे और तब उन पर ठंडा जल छिड़कते थे। ऐसा करने से शिलाएं छिन्न-भिन्न हो जाती थीं और इस तरह शिलाओं को हटाने से मुक्ति मिल जाती थी।

रेगिस्तानी इलाकों में दिन के समय उच्च ताप रहता है फलस्वरूप चट्टानें गरम हो जाती हैं (130° फा. तक) और ठंडी होने पर उनसे ऐसे तेज़ फुस-फुस की आवाज़ निकलती है कि सामान्य तथा अजनबी व्यक्ति भय से पागल हो उठे। रात के समय यह आवाज़ चट्टानों के टूटने या यों कहें कि मिट्टी के बनने की आवाज है। कोई भूत प्रेत नहीं।

पर्वतों की ऊंचाइयों पर ताप कम रहता है, विशेष रूप से समशीतोष्ण तथा उत्तरी जलवायु वाले प्रांतों में जाड़ों में बर्फ जम जाती है और फिर वसंत ऋतु में यही बर्फ पिघलती है। यह ज्ञात तथ्य है कि जल के जमने से (बर्फ बनने से) उसके आयतन में 9 प्रतिशत की वृद्धि होती है और साथ ही प्रति वर्ग मीटर 1500 टन का बल लगता है। इस प्रकार शैलखण्डों की दरारों में फंसा हुआ जल जब बर्फ बनता है तो आयतन बढ़ने तथा बल लगने से शैल टूट कर चूर-चूर होते रहते हैं। चट्टानें तोड़ने के लिए दरारों में पानी भरने का काम फिनलैण्ड में किया जाता है। कहते हैं कि वहां 60 हज़ार झीलें हैं।

लेकिन ताप के साथ जल की इस लीला के अतिरिक्त प्रवहमान जल की प्रवहन शक्ति अपार है। यदि पानी का वेग 10 इकाई हो तो प्रवहन शक्ति 10 लाख गुनी होगी। अनुमान है कि जिस धारा का वेग 15 से.मी. प्रति सेकंड होता है, वह केवल छोटे कण (महीन बजरी) बहा पाती है, 30 से.मी. प्रति सेकंड वेग होने पर बजरी बहा पाती है, 120 से.मी. प्रति सेकंड वेग होने पर एक किलोग्राम तक के पत्थर, 240 से.मी. प्रति सेकंड वेग होने पंर 64 किलोग्राम के बड़े टुकड़े तथा 9 मीटर प्रति सेकंड होने पर 320 टन भारी शिलाखण्ड तक बहा ले जाती है। इस तरह चट्टानों के बड़े और छोटे अंश पानी के साथ मीलो तक बहते चले जाते हैं जैसे लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे तथा वृक्ष के पत्ते पानी के साथ बह रहे हों। सेतुबंध रामेश्वरम् का पुल पत्थर से बनाया गया था जिससे होकर श्रीरामचन्द्र ने लंका पर आक्रमण किया था। कहा जाता है कि नल नील ने समुद्र पर जो पत्थर फेंके थे वे तैरने लगे थे। पत्थरों का तैरना या दूर दूर तक जाना आसान है। भीषण बाढ़ों में तो और भी प्रलयंकर दृश्य देखे जाते हैं। उसमें तो लोहे के पुल तथा रेलगाड़ी के 20 टन के डिब्बे तक बह जाते हैं।



चित्र 7 — अपक्षय-प्रकृति की लीला

इस तरह ऊंची ऊंची श्रेणियाँ घिसपिट कर समतल प्लेटों बन जाती हैं। बीच से बहने वाली जल धारांए अपने साथ बड़े बड़े पत्थर, छोटे छोटे गोल पिण्ड तथा बालू-बजरी समेटती चलती हैं। हरिद्वार में गंगानदी में इस तरह के विभिन्न आकार के शैलखंड देखे जा सकते हैं। यह गंगानदी की ही नहीं प्रत्येक चंचल, इठलाती नदी की लीला होती है। बाढ़ के समय इनके पेटों में न जाने कितना अपक्षयित पदार्थ छूट जाता है। गंगा-सिंधु का मैदान इसी प्रकार से एकत्र अपक्षयित पदार्थ से बना तो क्या आश्चर्य है इसमें? प्रारंभ में शैल थे और अंधाधुंध वर्षा होती रहती थी। लाखों वर्षों तक पृथ्वी से मिट्टी बनने् के लिए अवसर मिला। फिर क्रमशः वनस्पतियाँ, पशु तथा मानव प्रकट हुए।

इस प्रसंग में वायु या हवा का भी उल्लेख आवश्यक लगता है। प्रबल वायु में वह शक्ति होती है कि वह बड़े-बड़े पर्वतों से टकरा कर शैलों को तोड़ दे और छोटे-छोटे शिलाखण्डों तथा पत्थरों को उड़ाकर दूर-दूर तक ले जाए। रेगिस्तानों में बालू के बड़े-बड़े टीले बनाने में

वायु का ही हाथ रहता है। सहारा के रेगिस्तान में 450 मीटर ऊंचे बालु के टीले देखे गए हैं। व्हांगहो नदी की लोयस मिट्टी इसी प्रकार उड़ा कर लाई गई है।

इस तरह जीवन के उदय के पूर्व ताप, वर्षा तथा वायु प्रकृति की सहचारियों के रूप में अपक्षय के प्रमुख कारण बने।

अपक्षय की एक अन्य विधा है—विघटन। यह रासायनिक क्रियाओं से संपन्न होती है और रासायनिक अपक्षय कहलाती है। इसमें जनक शैल से घुलकर निकले हुए अंशो में और मूल शैलों में भी आमूल परिवर्तन होते हैं और नए पदार्थों का जन्म होता है। वस्तुतः यह भी बड़े आकार से छोटे आकार की दिशा मे होनेवाली प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप जिन सूक्ष्म कणों की उत्पत्ति होती है उन्हें कोलाइड कहते हैं जिनमें बहुत ही क्रियाशीलता होती है। सचमुच ही इन्हीं से जीवन का उदय हुआ है। वनस्पतियाँ उगीं और फिर तो जटिल अपक्षय प्रारंभ हुआ जिसे 'जैव अपक्षय' कह सकते हैं। हम इसे जानते हुए भी इसे रासायनिक अपक्षय में ही सम्मिलत कर रहे है।

रासायनिक अपक्षय में जलयोजन, कार्बेनेशन तथा आक्सीकरण अपचयन क्रियाओं का योगदान होता है। ये सभी योगेज क्रियाएं हैं। रासायनिक अपक्षय से सामान्यता पदार्थ के आयतन में वृद्धि ही होती है। उदाहरणार्थ, ग्रेनाइट से जब मृत्तिका (महीन मिट्टी) बनती है तो आयतन में 88 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है। लेकिन प्रकृति में ऐसा कम ही हो पाता है। अपक्षय के बहुत से पदार्थ विलयन में चले जाते हैं और कुछ गैस रूप में वायुमंडल में मिल जाते हैं। वास्तव में सर्वप्रथम भौतिक अपक्षय से विखण्डन हो लेता है तो विघटन आसान हो जाता है। प्रकृति इसी रास्ते पर अग्रसर होती रही है। किंतु ऐसा नहीं है कि जल, ताप तथा वायु रासायनिक अपक्षय में भूमिका न निभाते हों, हां, उनकी कार्यशैली बदल जाती है। इस तरह जल, शैलों के विलेय अंशों को घोलता जाता है। वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाइआक्साइड भी इस प्रक्रिया में सहायक होती है। विशेषतया चूना पत्थर जैसे शैलों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। आक्सीजन द्वारा शैलों के कुछ अवयवों का आक्सीकरण होता है। इसमें लोहा तथा गंधक के यौगिकों, कभी कभी मैंगनीज के भी यौगिकों का आक्सीकरण होता है। शैलखण्डों के ऊपर वनस्पतियाँ उगती हैं तो उनकी जड़ों, पत्तियों तथा अन्य अंगों के सड़ने से तमाम अम्ल (जिनमें कार्बेनिक अम्ल भी है) उत्पन्न होते हैं जो विलयन में

सहायक होते हैं। इस तरह से विलयित-अंश वातावरण के संपर्क में आने पर धीरे-धीरे अवक्षेपित होते हैं। विलयन, अवक्षपेण, आक्सीकरण आदि प्रमुख क्रियाएं रासायनिक-अपक्षय के अंगभूत हैं।

विश्वभर मे भूरे तथा लाल रंग के शैल मुख्यतः खनिजों से लौह (Fe) तथा मैंगनीज (Mn) के टूट निकलने तथा उनके आक्सीकरण के द्वारा आक्साइड बनने के कारण होते है। लौह के आक्साइडो से लाल, भूरे, पीले रंग की मिट्टियाँ बनती हैं। उड़ीसा, बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र की रंगबिरंगी मिट्टयाँ रासायनिक अपक्षय के फलस्वरूप ही बनी हैं

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, फेल्स्पार सभी प्रकार के शैलों का प्रमुख खनिज है इसलिए मृदा निर्माण में यही जनक पदार्थ का कार्य करता है। कार्बन डाइआक्साइड के सम्मिलित प्रभाव से यह खनिज विच्छेदित होकर केओलीन तथा अन्य खनिजो को जन्म देता है। यह विश्वव्यापी प्रक्रम है। इसमें जल की क्रिया से सोडियम, पोटैशियम तथा कैल्शियम के लवण विलयित होकर बाहर निकल आते हैं और बचा रहता है केओलीन। अभ्रक या माइका तो फेल्स्पार से भी अधिक आसानी से अपक्षीण होने वाला खनिज है। अभ्रक की दो किस्में ज्ञात हैं: श्वेत तथा काली। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि काली अभ्रक आसानी से टूट कर अपनी सतह पर जंग (लौह आक्साइड) जमा कर लेती है।

यदि पत्थर, चूना पत्थर हुआ तो कार्बन डाइआक्साइड के प्रभाव से वह पूरी तरह घुल जाता है और बचती हैं, उस स्थान पर अशुद्धियाँ। इस तरह पर्वत या प्रस्तर खण्ड का विलोप होना कितनी अदभुत क्रिया है!

अवसादी शैल पहले तीनों प्रकारों के शैलों एवं उनके अपक्षीण उत्पादों से युक्त रहता है। अतएव इन शैलों के विच्छेदन तथा विघटन से जो क्षति या लाभ होता है वह आग्नेय शैलों की तुलना में कम होता है क्योंकि अवसादी शैल एक बार के अपक्षीण पदार्थों से बने हुए होते हैं। ताप तथा जल का सम्मिलित प्रभाव जलवायु के नाम से विख्यात है। अपक्षय का निर्धारण जलवायु द्वारा तो होता ही है किंतु रेगिस्तानों में जलाभाव के कारण भौतिक तथा रासायनिक अपक्षय एकसाथ चलते हैं। दोनों ही के फलस्वरूप शैलों का विभंजन नुकीले सूक्ष्म खण्डों में ही हो पाता है। उससे आगे नहीं। तभी तो बालू ही बालू दिखती है, रेगिस्तान में!

सर्वाधिक अपक्षय तो आर्द्र-उष्ण कटिबंधों या उपोष्ण कटिबंधों में होता है। इन भागों में खनिज पूरी तरह विघटित हो जाते हैं और उनका विलेय पदार्थ दूर दूर तक चला जाता है। क्षारीय आग्नेय शैलों के सतह पर लोह, एल्यूमीनियम और कभी-कभी मैंगनीज़ के आक्साइड बचे रहते हैं और सिलिका अंश नीचे गहराई तक चला जाता है। अम्लीय शैल कुछ क्वार्ट्ज़ (सिलिका) भी छोड़ जाते हैं। इस तरह जिन शैलों या खनिजों मे 60-70 प्रतिशत तक सिलिका होता है, उनका अपक्षय से नाममात्र का (5 प्रतिशत) सिलिका बचता है। शेष भाग लौह तथा एल्यूमीनियम के आक्साइड (ऐलिट) का होता है, जो ऊपरी भाग में होता है। इस तरह से लोहमयी (लैटराइटी) रक्तिम मिट्टियों का जन्म होता है।

शीतोष्ण जलवायु में अपक्षय की तीव्रता उष्ण कटिबंध जितनी नहीं होती। उष्ण कटिबंध का उच्च ताप रासायनिक अपक्षय की गति को कई गुना बढ़ा देता है। रासायनिक अपक्षय के उत्पाद शीत प्रदेशों में तेजी से हट नहीं पाते। इसमें से कुछ पुनः संयोग करके नवीन यौगिकों का निर्माण करते हैं जिससे ऐलिट (Allit) के बजाय केओलीन जैसे पदार्थ बनते हैं। केओलीन एक प्रकार की मृत्तिका (द्वितीयक खनिज) है जिसमें विलेय लवणों को अवशोषित करने की क्षमता होती है। फलस्वरूप शैलों का विलेय अंश वहीं का वहीं रह जाता है; और मूल खनिज भी बना रहता है। उर्वरता की दृष्टि से उष्णकटिबंध की मिट्टियाँ इसलिए उतनी उर्वर नहीं होती जितनी कि शीतोष्ण प्रदेशों की। इस तरह जलवायु 'मिट्टी के मोल' को निर्धारित करने वाला कारक है।

शुष्क तथा अर्धशुष्क जलवायु वाले प्रदेशों में अपक्षय की तीव्रता शीतोष्ण प्रदेशों से बहुत कम होती है। जलाभाव के कारण विलेय लवण नीचे नहीं जा पाते, फलस्वरूप सतह पर ही कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के कार्बेनेट संचित होते रहते हैं। शैलों से लौह, ऐल्यूमीनियम, मैंगनीज के यौगिकों के विलयित होने की नौबत ही नहीं आ पाती। फलस्वरूप इन क्षेत्रों में नवीन प्रकार के द्वितीयक खनिज 'मांटमारिलोनाइट' (montmorillonite) नामक मृत्तिका की प्रधानता रहती है।

भारतीय शास्त्रों का मत है कि यह अधम भौतिक शरीर पांच तत्वों के मेल से बना है (यहां पर आप तत्व की परिभाषा पर ध्यान न दें); "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा।"

हम इन पाँचों का किसी न किसी रूप में उल्लेख कर चुके हैं। ये हैं: 'जनक शैल', 'स्थलाकृति', 'जलवायु', 'जीव' तथा 'काल'। हमने प्रकृति की सहचारियों का उल्लेख किया है। अवश्य ही कई प्रकार के कारकों से मिट्टी बनती है। हमने शैलों को जनक मानकर प्रकृति के संयोग से मिट्टी की उत्पत्ति का रूपक बाँधा है। अवश्य ही उपयुक्त पांच कारकों मे से पहले को छोड़कर शेष प्रकृति तथा उसकी सहचारियों के रूप में हैं।

जिस मंथर गति से जितने अंतराल तक जनक तथा जननी का मेल, संयोग या प्रसंग चलता है, वही तो 'काल' है। प्रकृति अत्यंत सहिष्णु एवं धीर है। उसे काल की खबर ही नहीं रहती। उसकी पुत्री मिट्टी भी माता के समान सहनशील है। उसका एक नाम 'क्षमा' भी है। कालावधि (आयु) के ही अनुसार मिट्टी का रूप, रंग, निखार, गठन होता है। कौन नहीं जानता कि शिशु, कुमार, तरुण, वृद्ध, ये मनुष्य जीवन की चार अवस्थाएं हैं। लेकिन मनुष्य की कुल जीवन अवधि अधिक से अधिक 100 वर्ष होती है (जीवेम शरदः शतम्)। लेकिन मिट्टी की आयु गणना एक मनुष्य की आयु से नहीं, कई पीढ़ियों से ही अनुमानित हो सकती है। वैसे मिट्टी हर क्षण बदलती है। इस क्षण जो उसका रूप है, वह सिद्धांततः अगले क्षण नहीं रहेगा। प्रकृति का भी वेश पल-पल परिवर्तित होता रहता है (पल-पल परिवर्तित प्रकृतिवेश) किंतु मिट्टी के प्रौढ़ रूप का विकास हज़ारों वर्षों में ही संभव हो पाता है।

वस्तुतः आयु की गणना एक प्रकार से मिट्टी के गर्भस्थ होने से बड़े होने तक (परिपक्वय) की काल गणना है। मनुष्य तथा पशु 1 वर्ष से कुछ कम-ज्यादा समय तक ही माता के गर्भ में रहते हैं। पक्षी अण्ड़ों से जल्दी फूट निकलते हैं किंतु मिट्टी है कि प्रकृति के गर्भ में पड़ी दीर्घकाल तक सोती रहती है और प्रकृति भी बड़ी सहनशीला है। मिट्टी धीरे-धीरे प्रौढ़ता प्राप्त करती है। प्रकृति के गर्भ में तथा प्रकृति की गोद में अंतर नहीं होता। गर्भ में रहकर भी वह गोद में रहती है, उसी में उत्पन्न होती है, उसी में बढ़ती है, उसी में इधर-उधर झूलती है। लेकिन उसे ज्यादा चलना फिरना नहीं होता। चलना फिरना तो उसके क्षय (मृत्यु) का सूचक है। इस तरह मिट्टी बनती और बिगड़ती है।

मिट्टी को अन्य जीवों की भांति बारबार शरीर धारण करना होता है। जिस मिट्टी पर आदि मानव खेला और बड़ा हुआ था, वह कब की विनष्ट हो चुकी। उसका कायाकल्प हो गया। प्रकृति परिवर्तनशील है नदी पल-पल वेश बदलने के लिए बदनाम है। लेकिन उसका

यह पल सदियों तथा सहस्त्राब्दियों का होता है। मिट्टियाँ भी परिवर्तनशील है। प्रति युग मे उनका मोल किया जाता है। मिट्टी सर्वदा पुजनीय रही है। जनक शैल अपनी बलि दे देकर मिट्टी पुत्री को पुनः पुनः जन्म देता रहा है और प्रकृति माता बड़े दुलार से उसे पालती पोसती आ रही है। किंतु मिट्टी जाती कहीं नहीं, वेश बदलकर स्थल से जल के भीतर चली जाती है। जहां जल था वहां स्थल बनता है और फिर से अपक्षय प्रारंभ होता है। चाहे वह हिमालय की श्रृंखला हो, चाहे राजस्थान का मरुस्थल या कि गंगा-सिंधु की घाटी; प्रकृति नटी के अधीन ही मिट्टी का जन्म होता है

सारा अपक्षय ऊर्जा आश्रित है। वनस्पतियों से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ ऊर्जा-उन्मोचक होते हैं। अतएव पृथ्वी पर वनस्पतियों के उदय काल से ऊर्जा का उन्मोचन तीव्र गति से होता रहा है, जिससे मिट्टी का निर्माण तेज हुआ है। लेकिन इससे हमें यह धारणा नहीं बना लेनी चाहिए कि सारी मिट्टियाँ वनस्पति के उदय होते ही बन गईं । यह निश्चित है कि सारी आदिम मिट्टियाँ रूपांतरित या विनष्ट हो चुकी हैं। आज की मिट्टियाँ आधुनिक जलवायु की देन हैं। उनकी उत्पत्ति अर्वाचीन है। मनुष्य ने भी उनके बनने में योग दिया है। किंतु यह तो बलकृत निर्माण है, जैसे बलपूर्वक बच्चा उत्पन्न कराना।

ऊपर इंगित पांच कारकों में से कोई भी कारक पृथ्वी पर स्थायी नहीं है। उनमें अत्यधिक भिन्नता या परिर्वतनशीलता पाई जाती है। वास्तव में न एक जलवायु है, न एक शैल, न एक स्थलाकृति, न एक काल (आयु)। जलवायु अनेक हैं, शैल भी अनेक हैं, स्थलाकृतियाँ भिन्नभिन्न हैं पृथ्वी के अंगों की आयु भी भिन्न है। फलस्वरूप इन कारकों के सैकड़ों-हज़ारों संयोग बनते हैं जो मिट्टी के निर्माण में कार्य करते हैं। मिट्टी का बनना सरल भले लगे, लेकिन होता है अत्यंत जटिल।

□□

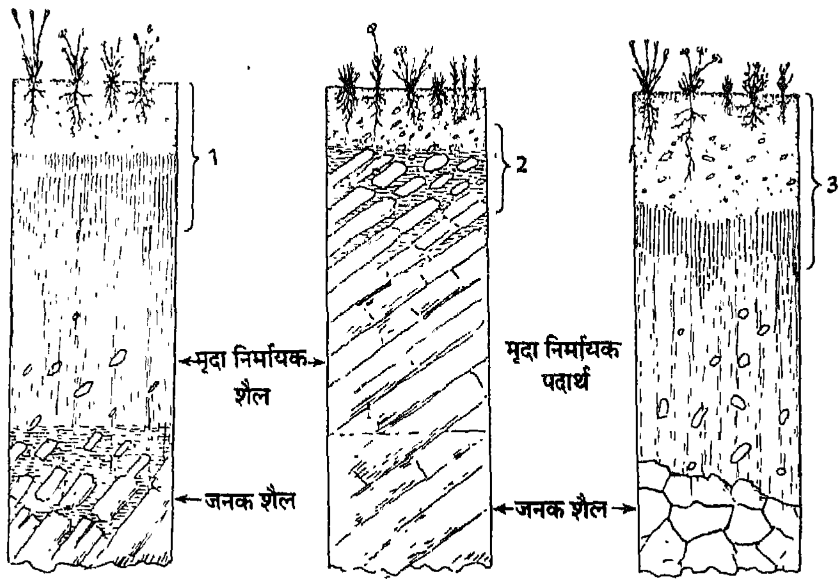
4

मिट्टी बढ़कर बड़ी हुई

लो, रंगबिरंगी बेलबूटों वाली हरी चुनरिया ओढ़े यह मिट्टी किस तरह उठ खड़ी हुई। आप उसके ऊपरी मुख मण्डल से चमत्कृत न हों, इसके अधोभाग या कटि प्रदेश तथा पाद प्रदेश का भी तो निरीक्षण करें। इसका पूरा पूरा स्वरूप तो तभी भाएगा जब आप इस तन्वगी का आपादमस्तक अवलोकन करेंगे। जनक शैल ने प्रकृति की कोख में सारी सामग्री छोड़कर अपने कार्य की इतिश्री समझ ली थी, किंतु प्रकृति माता ने बड़े धैर्य एवं यत्न से उसे स्थापित रखा, उसे विकसित होने दिया और जब वह सयानी (प्रौढ़) हो गई, तब प्रकृति चिंतामुक्त हुई। कुछ लोगों को मिट्टी नहीं प्रकृति ही रंगबिरंगी दिखती है। क्यों न हो, मिट्टी की माता जो है, आत्मा और आत्मवान एक से ही दिखाई देते हैं।

वस्तुतः अपक्षय द्वारा पदार्थ (मिट्टी बनाने वाला पदार्थ) का निर्माण होता है और उसके बाद उसकी विकास प्रक्रिया प्रारंभ होती है। जिस तरह कुम्हार मिट्टी को गूंध करके पहले लोदा या लोई बना लेता है और तब वह उसे चाक पर चढ़ा कर हाथ फेरता है जिससे विविध आकार के पात्र बनते जाते हैं---वह गीली लोई भिन्न-भिन्न रूपाकार ग्रहण कर लेती है, मिट्टी का भी स्वरूप-विकास कुछ इसी तरह हुआ है। कालचक्र के साथ मृदा-निर्मायक पदार्थ (जो अपक्षय से निर्मित हुआ रहता है) का संस्तरीकरण होता रहता है। सारी मिट्टियों में विकास की यह क्रिया एक-जैसी होती है और जब विकास क्रम रुक जाता है तो मृदा की एक विशिष्ट रूपावलि तैयार हो जाती है जिसे परिच्छेदिका' (Soil Profile) कहते हैं। यह किसी भी मिट्टी की निजी विलक्षणता है, उसकी निजी पहचान है। वस्तुतः मृदानिर्माण के बाद विकास की परिचायिका यही परिच्छेदिका होती है।

जनक पदार्थ से मृदानिर्मायक पदार्थ बनने में ही काफी समय लगता है जबकि परिच्छेदिका के स्तरों के निर्माण में अपेक्षाकृत कम समय लगता है। अनुमान है कि 2 अरब वर्ष पूर्व जब द्रवीभूत लावा का संपीड़न हुआ, तबसे एक ही स्थल पर एक ही जनक पदार्थ से न जाने कितनी बार मिट्टी बनी होगी। यह सोचना भ्रामक है कि मिट्टी पहली बार बनी है या कि जनक शैल से एक ही बार मिट्टी बनती होगी।



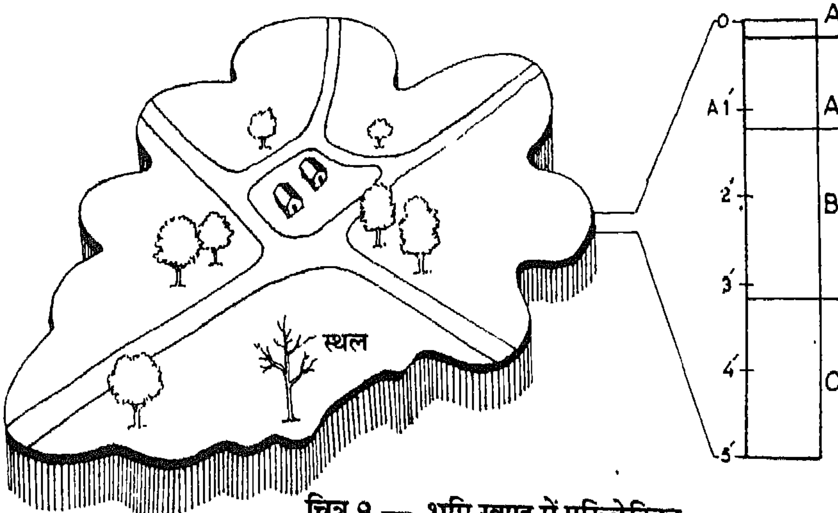
चित्र 8 — विभिन्न प्रकार की मृदा परिच्छेदिकाएँ (1, 2, 3) उनके नीचे मृदा निर्मायक पदार्थ तथा जनक शैल (अपक्षय रहित) दिखाए गए हैं।

यद्यपि अपक्षय द्वारा प्राप्त मृदापदार्थ सर्वत्र समांग रहता है किंतु अपनी विपुलता या अधिकता के कारण उसकी ऊपरी सतह और भीतरी सतह में अंतर आने लगता है। वस्तुतः इसी अंतर आने को 'संस्तर निर्माण' (Horizon formation) कहते हैं। कुछ काल के अनंतर

ये संस्तर बिल्कुल स्पष्ट दिखने लगते है और अंत में हम इन सभी संस्तरों को मिट्टी या 'मृदा की परिच्छेदिका'(Soil Profile) कहते हैं।

यह परिच्छेदिका मूल जनक पदार्थ पर विभिन्न प्रक्रमों के कार्यशील होने से बनती है। संस्तरों का बनना मिट्टी के विकास का उसी तरह सूचक है, जिस तरह पशुओं में दांतों का निकलना उनकी प्रौढ़ता का सूचक होता है। मिट्टी को बढ़ते देखकर माता प्रकृति प्रफुल्लित होती है लेकिन आगे चलकर यह बढ़ना रुक भी जाता है।

परिच्छेदिका में संस्तरों की संख्या एक से तीन तक होती है। आदर्श परिच्छेदिका में तीन संस्तर होते हैं। इन्हें अंग्रेजी के A, B तथा C अक्षरों से अंकित किया जाता है और पुकारा भी जाता है। हम चाहें तो इन्हें अ, ब, स या अ, आ, इ कह सकते हैं किंतु मृदाविज्ञानियों ने एक बार इनका जो नामकरण कर दिया है वह अब सर्वमान्य है। वस्तुतः ये तीनों 'प्रधान संस्तर' (Master Horizons) कहलाते हैं। यदि किसी परिच्छेदिका में ये तीनों संस्तर नहीं होते तो समझना चाहिए कि मिट्टी या तो अप्रौढ़ (Immature) है या फिर ऊपर से कोई संस्तर कट कर बह गया है या फिर उसका विकास रूका हुआ है।



चित्र 9 — भूमि खण्ड में परिच्छेदिका

जेनी नामक मृदाविज्ञानी ने इस संस्तरों की व्याख्या एक भिन्न प्रकार से की है। उनका कहना है कि ये संस्तर समृद्धि (संग्रह) या विपन्नता (ह्रास) के सूचक हैं। ये मूल्याकृति घाटी और शिखर के तुल्य हैं। यदि हम उस प्रक्रम पर विचार करें जिससे संस्तरीकरण या संस्तरों का सज्जाकरण संभव होता है तो शायद बात स्पष्ट हो जाएगी। वस्तुतः मृदाविकास मे वर्षा जल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि वर्षा न हो, यदि वर्षाजल मृदा पदार्थ में से प्रवेश न करे तो संस्तरों का उद्‌भव संभव नहीं हो सकता।

इस वर्षा जल के माध्यम से जो क्रियाएं उक्त कार्य में भाग लेती हैं वे मृदाविज्ञान की भाषा में अपवहन (Eluviation) तथा विनिक्षेपण (Illuviation) कहलाती हैं। मृदा पदार्थ के अवयवों का वर्षाजल द्वारा नीचे की ओर स्थानांतरण या वहन ही 'अपवहन' है। जल अपने साथ मिट्टी के सूक्ष्म कणों को तथा शैलों के अवयवों को विलयित करके विलेय अंशों को लेता हुआ नीचे की ओर यात्रा करता है। यह जल परवश रहता है, गुरुत्वाकर्षण के अधीन रहता है, अतएव इसे नीचे ही जाना है। लेकिन नीचे की यह यात्रा वर्षा की मात्रा पर निर्भर करती है। जितनी ही अधिक वर्षा होगी जल उतना ही अधिक नीचे जा सकेगा। शुष्क रेगिस्तानी भागों की अपेक्षा आर्द्र प्रदेशों में जल अधिक नीचे जाता है जिसका अर्थ होता है अधिक अपवहन।

स्पष्ट है कि ऊपरी सतह की अपेक्षा गहराई वाले स्तरों में कणों तथा विलयित यौगिकों की अधिकता होती जाती है। इस तरह ऊपरी सतह विपन्न होती जाती है और उसके नीचे की सतह संपन्न हो जाती है। ऊपरी विपन्न सतह 'A' संस्तर और उसके नीचे की संपन्न सतह'B' संस्तर कहलाती है। अतः अपवहन के फलस्वरूप 'A' संस्तर बनता है। इसमें महीन कण एवं विलेय तत्व कम हो जाते हैं, इसका रंग भी धूमिल पड़ जाता है।

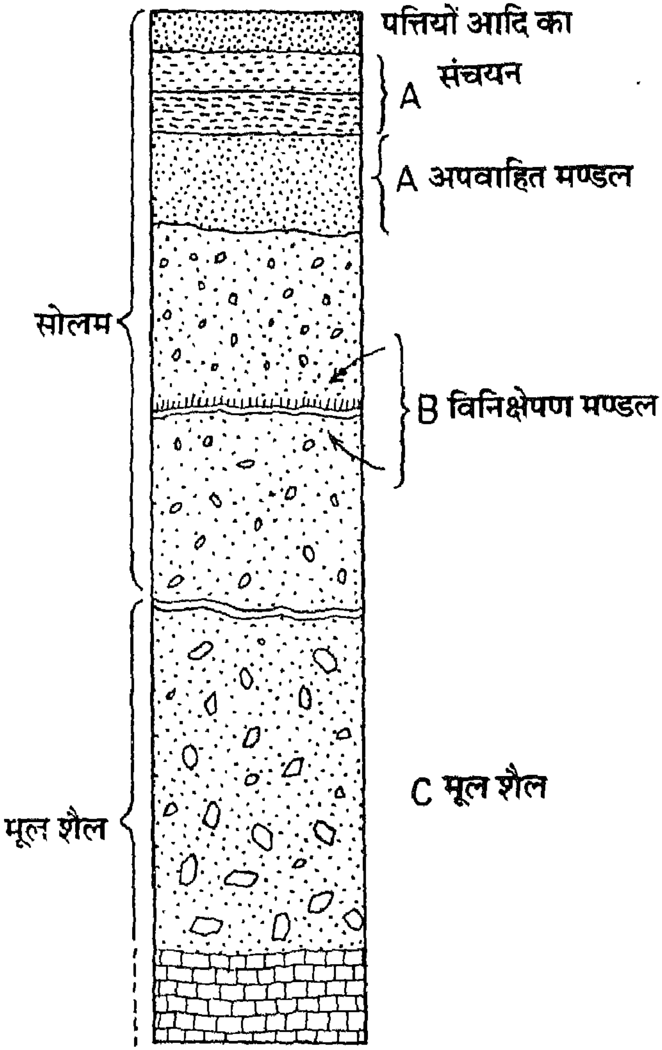
'विनिक्षेपण' अपवहन की विलोम क्रिया है। इसमें गहराई पर कणों एवं विलेय अंश का संग्रहण होता है। 'B' संस्तर इसी विनिक्षेपण का प्रतिफल है। इस प्रकार मृदा पदार्थ का पुनःव्यवस्थित होना ही संस्तर निर्माण एवं मृदा विकास का सूचक है। इन संस्तरों के नीचे जनक द्रव्यअपने मूल रूप में दबा पड़ा रहता है, बिल्कुल निश्चेष्ट। लेकिन उसमें इतनी क्षमता रहती है कि समय पड़ने पर वह पुनः 'A' तथा 'B' संस्तरों को उत्पन्न कर दे। यह नीचे का निश्चेष्ट संस्तर 'C' संस्तर कहलाता है। कहींकहीं मूल जनक द्रव्य ऊपर निकलता दिखाई देता

है। इसका साक्षात उदाहरण पठारी इलाकों के बीच-बीच में पड़े हुए बड़े-बड़े प्रस्तर खण्ड या पहाड़ियों के रूप में मिलता है। ये शिलाएं मानो अपने-अपने शरीर को काट-काट कर मृदा पदार्थ बनाती हैं और यह पदार्थ उनके पास भी संचित रहता है तथा दूर-दूर तक बहकर संस्तरों में संग्रह भी होता है। पर्वतों पर जंगलों का उगना और उनके बीच से नदियों, नालों तथा जलधरोओं का सतत प्रवाह मृदा के निर्माण में तथा उसके दूर दूर तक बह कर जाने में सहायक बनता है।

इस प्रकार 'A' 'B' तथा 'C' इन तीनों संस्तरों का एकजुट स्वरूप परिच्छेदिका का द्योतक है। सामान्यतया इन संस्तरों को समांतर रेखाओं से अंकित कर दिया जाता है किंतु ये संस्तर इतने समतल नहीं होते। ये आड़े-तिरछे या वक्राकार दिखाई देते हैं।

इस तरह मिट्टी का पूरा शरीर बन कर तैयार है। इन्हें आप पाद भाग (C), कटि भाग (B) तथा शीर्ष भाग(A) कह सकते हैं। लेकिन मिट्टी उठ कर खड़ी नहीं होती। इसका विकास अधोमुखी होता है। जिस प्रकार मानव का शिरोभाग समस्त गतिविधियों का केंद्र है, उसी प्रकार 'A' संस्तर भी है। इसमें कई उप-संस्तरों (Subhorizons) की पहचान की गई है। बात ऐसी है कि जब मृदा पदार्थ तैयार हो जाता है, तो उस पर विविध वनस्पतियाँ उग आती हैं। वे अपने मूल (जड़) तंत्रों द्वारा विभिन्न गहराइयों से तत्वों को ग्रहण करके उन्हें ऊपरी सतह पर लाकर छोड़ देती हैं और जब सारी वनस्पतियाँ मिट्टी की ऊपरी सतह पर विनिष्ट होकर मिल जाती हैं, तो प्रचुर कार्बनिक पदार्थ (जैव अंश) का संचय हो जाता है। कभी-कभी इसकी एक पतली परत बन सकती है, जो मिट्टी के 'A' संस्तर के ऊपर जमा हो जाती है। इसे 'A_0' संस्तर कहते हैं। इस संस्तर के बनने से मानों मिट्टी को ओढ़नियाँ मिल गई हैं। फिर तो 'A' संस्तर का विकास अत्यंत विविधतापूर्ण होता है। 'A' संस्तर में भी 'A_1' तथा 'A_2' जैसे उपसंस्तर बन जाते हैं।

स्पष्ट ही ऊपरी सतह 'A' संस्तर है। इसमें A_0, A_1, A_2 उपसंस्तर रहते हैं। यह संस्तर पृष्ठ मृदा (Surface Soil) कहलाती है। इसी संस्तर में वनस्पतियों की जड़ें रहती हैं, इसी में कार्बनिक पदार्थ जमा होता है और यह संस्तर वर्षा की बूंदों का आघात भी सहता है। इसी संस्तर में हल चलता है और खेती की जाती है। 'A' तथा 'B' संस्तरों को मिलाकर 'सोलम'

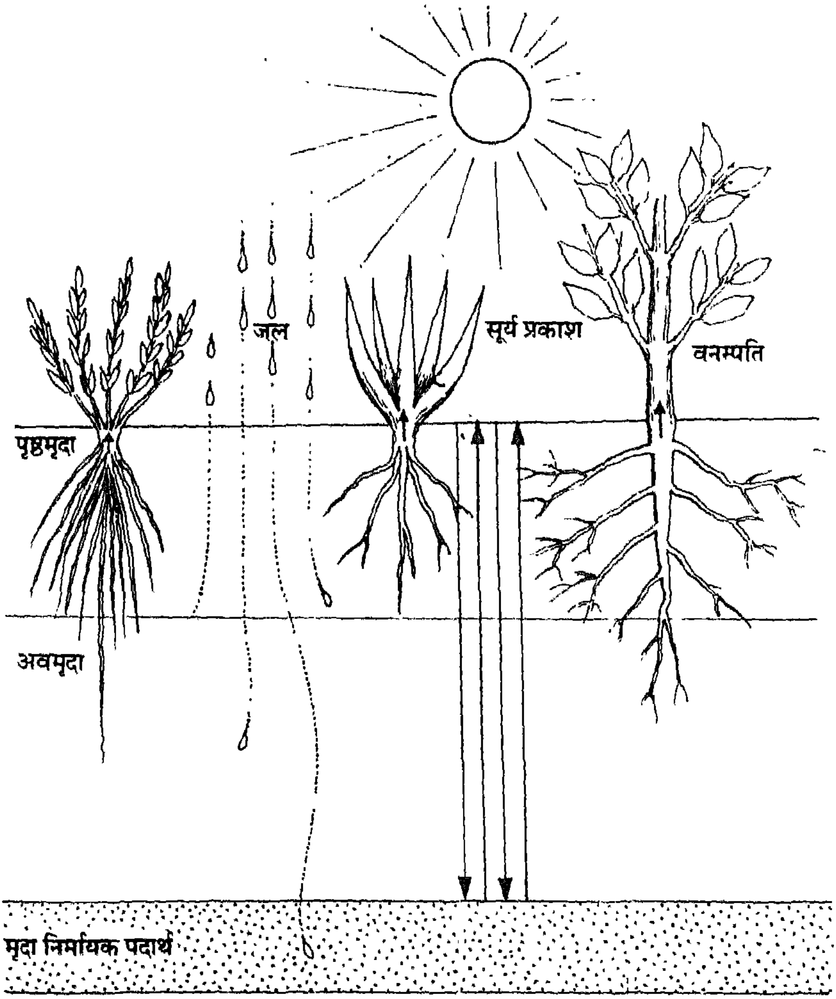


चित्र 10 — मिट्टी की आदर्श परिच्छेदिका

(Solum) कहने की प्रथा है। 'B'संस्तरों को 'अवमृदा' (Subsoil) भी कहते हैं। वस्तुतः 'A' तथा 'B' संस्तरो के विकास पर मृदाविज्ञानियों ने पोथे के पोथे लिख मारे हैं।

जलवायु के अनुसार 'A' संस्तर के ऊपर संचित कार्बनिक पदार्थ के उपसंस्तर 'A_0' की मोटाई में उसके गुण बदलते रहते हैं। वनस्पतियों के विघटन से कार्बन डाइआक्साइड गैस बनती है और साथ ही फार्मिक, ऐसीटिक, लैक्टिक, सिट्रिक अम्ल जैसे कार्बनिक अम्ल भी उत्पन्न होते हैं। कार्बन डाइआक्साइड के कुछ अंश का उपयोग पौधे अपना भोजन बनाने में कर लेते हैं, किंतु कुछ अंश पानी में विलयित होकर मृदा पदार्थ के क्षारीय तत्वों के यौगिकों को विलयित करके बाइकार्बोनेट बनता है। इससे मिट्टी की अम्लता घटती है। उष्ण जलवायु में अन्य अम्ल भी विघटित हो जाते हैं किंतु शीत (शीतोष्ण) प्रदेशों में ये अम्ल ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं और वर्षा के जल के साथ 'A_0' उपसंस्तर से नीचे के 'A' संस्तर में चले जाते हैं। यही नहीं, शीतोष्ण प्रदेशों में कार्बनिक पदार्थ का विघटन भी कम तीव्रता से होता है। अतएव कार्बनिक पदार्थ की मोटी परत भी एकत्र हो जाती है। इस प्रकार के पदार्थ को अपरिपक्व ह्युमस (Raw humus) कहते हैं। यह परत 30 से.मी. तक मोटी हो सकती है। बलुही मिट्टियों में यह मोटाई 1-7 से.मी. तक होती है। यह परत नीचे के मिट्टी संस्तर 'A' को वर्षा की चोट से बचाती है और एक तरह से पोषण तत्वों का संग्रह बनाये रखती है, अन्यथा 'A' संस्तर तो पहले से निर्धन होता है। फिर भी जहां खनिज अत्यन्त मंद गति से विघटित होते हैं, वहीं कार्बनिक पदार्थ का विघटन द्रुत गति से होता है।

ऐसा विश्वास है कि जब 'A_0'उपसंस्तर से होकर वर्षा जल प्रवेश करता है तो यह अपने साथ तमाम अम्लों से लैस रहता है और नीचे के मृदा पदार्थ से अभिक्रिया करता है। अम्लों के प्रभाव से सिलिकेट खनिज से सर्वप्रथम सोडियम, फिर पोटैशियम, तब कैल्सियम मैग्नीशियम, मैंगनीज, एल्यूमीनियम तथा लौह क्रमशः विलग होते जाते हैं। किंतु जैसे ही कैल्सियम तथा मैग्नीशियम नीचे जाते हैं उनकी भेंट सिलिकेट, फास्फेट, कार्बोनेट आदि यौगिकों से होती है, जिनसे मिलकर वे अविलेय यौगिक बनाते हैं और इस तरह इनकी यात्रा का यहीं अंत हो जाता है। पोटैशियम के साथ भी ऐसा होता है, किंतु सोडियम अत्यन्त विलेय होने के कारण बहुत नीचे प्रविष्ट होकर भौम जल का अंग बन जाता है। जहां वर्षा कम होती



चित्र 11— मिट्टी तथा पौधे का संबंध

है, प्रायः शुष्क जलवायु में विलयित अवयव 'A संस्तर के नीचे जा ही नहीं पाते, अतएव उनकी क्षति नहीं हो पाती।

'A' संस्तर की मोटाई जलवायु पर आश्रित है। शीत तथा शीतोष्ण मण्डलों में यह 25-40 सें०मी०, उष्ण कटिबंध में इससे भी अधिक और अर्ध शुष्क तथा उपोष्ण घास के मैदानों में 60-75 सें०मी० तक हो सकती है। इस संस्तर में सबसे ऊपरी परत अधिक गहरे रंग की होती है क्योंकि कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक रहती है। यह परत अधिक रंध्रमय भी होती है। इसके नीचे का हिस्सा हल्के रंग का तथा अधिक संहत होता है अतएव इसे 'A_1', तथा 'A_2' में विभाजित कर दिया गया है। काल की दृष्टि से 'A' संस्तर का निर्माण 30 वर्षों में होता है किंतु 'B' संस्तर के बनने में शताब्दियाँ लग जाती हैं।

'A' संस्तर के नीचे का 'B' संस्तर कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम, मैंगनीज़ तत्वों का संग्रहालय है। यही नहीं, लौह तथा ऐल्यूमीनियम जैसे तत्व भी कार्बनिक अम्लों के प्रभाव से विलयित होकर जब 'A' संस्तर के नीचे चलते हैं, तो विषम परिस्थितियों के कारण 'B' संस्तर में अवक्षेपित हो जाते हैं। ये यौगिक भीगने तथा सूखने से अंततः सीमेंटीकारक का काम करते हैं जिससे खनिज के कण मिलकर पत्थर जैसा कठोर परत बना सकते हैं। इस संस्तर का विशेष लक्षण कठोर स्तर (Hard pan) का निर्माण है। जलवायु के अनुसार इस संस्तर में कार्बनिक पदार्थ का भी अवक्षेपण होता है। यह संस्तर रंगबिरंगे उप-संस्तरों की झांकी उपस्थित करता है। काफी मोटा 'B' संस्तर 200 शताब्दी प्राचीन हो सकता है। शुष्क क्षेत्रों में यह संस्तर ठीक से विकसित नहीं हो पाता। इसकी मोटाई शीतोष्ण प्रदेशों में 20-50 सें.मी., उष्णकटिबंध में इससे भी अधिक और घास के मैदानों में सबसे अधिक होती है।

स्मरण रहे 'B' संस्तर के नीचे मूल जनक पदार्थ है। यह 'C' संस्तर है। इसके ऊपर ही मृदा पदार्थ का विकास और परिच्छेदिका का निर्माण होता है। यह एक तरह से जनक शैल से अभिन्न होता है। इस संस्तर की विशेषता इसकी निष्क्रियता तथा तीनों संस्तरों में से सबसे अधिक मोटाई है। कभी कभी इसके ऊपर केवल 'A' संस्तर रहता है। तब उस मिट्टी को 'AC' मिट्टी कहते हैं। मृदापिण्ड (शरीर) 'C' संस्तर के लिए सुरक्षाकवच का काम करता है। यह वह गुप्त धन है जो विपत्ति में काम देता है।

इस तरह अपक्षय तथा मृदा निमार्ण कार्य साथसाथ चलते हैं। अजीब दुनिया है जिसमें 'मृदानिर्मायक' पदार्थ के साथ साथ अपक्षयित पदार्थ भी रहते हैं। इनमें अंतर कर पाना कठिन है, किंतु अपक्षय पहला चरण होता है और मृदा निर्माण द्वितीय चरण। ये दोनों चरण

प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही घटित होते हैं, प्रत्येक क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। इस तरह ध्वंस (अपक्षय) के साथ साथ सृजनात्मक क्रिया (मृदा निर्माण) चलती है। ऊपर से मृदा निर्माण की सारी प्रक्रिया उलझी हुई लगती है, कोई भी चरण या अवस्था स्पष्ट नहीं रहती, जैसे एक रस्सी में तमाम धागे बाँट दिए गए हों। भला कहां संभव है कि आंख यह बता सके कि कौन धागा कहां समाप्त हुआ और कब दूसरा चालू हुआ? बड़ी जटिल है सारी प्रक्रिया।

परिच्छेदिका में संस्तरों के प्रकार तथा उनकी व्यवस्था इस बात का प्रलेख (Record) है कि जन्म से लेकर अबतक मिट्टी के ऊपर क्या क्या बीता। जब मृदाविज्ञानी मृदारूपी शरीर का आपरेशन करता है तो उसके सारे संस्तर प्रकट होते हैं। इस शवच्छेद में शल्यचिकित्सक जैसे सूक्ष्म औज़ारों की आवश्यकता नहीं पड़ती। मृदाविज्ञानी को कैंची, सूई, धागा जैसे सूक्ष्म औज़ारों के बजाए खुरपी, फावड़ा, रुखानी आदि की आवश्यकता होती है। वह कहीं भी 1 मीटर चौड़ा, 2-3 मीटर लंबा तथा 1-1 $\frac{1}{2}$ मीटर गहरा गड्ढा खोद लेता है और मृदा शरीर के अंगप्रत्यंग को खोल कर जांच कर लेता है। यही तो है उस मृदा युवती की 'शरीरयष्टि' परिच्छेदिका अपरदन होने पर इस परिच्छेदिका का मूल स्वरूप विकृत हो जाता है।

जब मिट्टी बड़ी हो गई, उसकी डाक्टरी पहचान हो गई तो कौन संदेह करेगा कि उसके शरीर नहीं? फिर भी इसकी पहचान को स्पष्ट करना होगा।

□□

5

मिट्टी का स्वरूप

प्रकृति की इस पुत्री को कैसे पहचाना जाए, कैसे उसका गुणगाण किया जाए ?हमारे पूर्वजों ने इसे भलीभांति पहचान करके ही पृथ्वी सूक्तों की रचना की थी। हम भी इसे पहचानते हैं, लेकिन शयद दृष्टिकोण में अंतर आया है। ज्यों-ज्यों मृदाविज्ञान का विकास हुआ है, मिट्टी की पुरानी परिभाषाएं बदली हैं।1840 ई० में जर्मनी के महान् रसायनशास्त्री लीबिग ने मिट्टी को 'कठोर' (Storage bins) की संज्ञा प्रदान की थी। सर्वसम्मत एक अन्य परिभाषा इस प्रकार भी थी, "मिट्टी शैल तथा खनिज पदार्थ के साथ जैव पदार्थ का मिश्रण है।"

यह परिभाषा कितनी दोषयुक्त है, इसका आभास इसी बात से हो जाता है कि अब तक तो हम लगातार मिट्टी को सशरीर पिण्ड के रूप में कहते-सुनते आ रहे हैं। तो यह मिश्रण कैसे बन गई? वास्तव में मिट्टी एक सजीव पिण्ड (Living Body) है। इसका विकास शरीर की ही भांति होता है। यहीं नहीं, यह मृदा पिण्ड जीवन से ओतप्रोत है। करोड़ों नन्हें नन्हें प्राणियों से युक्त है। मिट्टी प्रकृति में शरीर के ही समान है। इसमें 5 प्राकृतिक इंद्रियों में से चार इंद्रियाँ हैं, केवल श्रवणेंद्रिय नहीं है। इसमें न तो ध्वनि उत्पन्न होती है, न श्रवणशक्ति से मिट्टी के अध्ययन में कोई सहायता मिलती है।

मिट्टी संबंधी प्राचीन मान्यताएं, धारणाएं या परिभाषाएं वैसी ही हैं, जैसे पौधे के कुचले अंश को पौधा कहना, पशु शरीर को कीमा बनाकर उसे पशु कहना। इन्हें कहना चाहिए पादप पदार्थ या पशु पदार्थ न कि पौधा या पशु? इसी तरह शैलों, खनिजों तथा कार्बनिक पदार्थ का मिश्रिण मिट्टी नहीं, मिट्टी निर्मायक पदार्थ (मृदा पदार्थ) है।

वास्तव में किसी पिण्ड (शरीर) की पहचान करने में स्वरूप विज्ञान (Morphology) का बड़ा महत्व है। विज्ञान की विविध शाखाओं मे से वनस्पति विज्ञान मे सर्वप्रथम इस स्वरूप विज्ञान को मान्यता प्राप्त हुई, जिससे पौधों के वाह्य तथा आभ्यंतर अंगों की परख अत्यंत सूक्ष्मता से की जा सकी। इसी प्रकार प्राणिविज्ञान मे पशुओ का सांगोपांग अध्ययन हुआ, लेकिन मृदा के साथ ऐसा नहीं हुआ। सच तो यह है कि सृष्टि के प्रारंभ से लेकर आज तक मनुष्य कृषि के विषय में चिंतित भले ही रहा हो लेकिन भूमि की प्रचुरता होने से मनुष्य एक भूमिखण्ड को छोड़कर दूसरे में खेती करता रहा है। ऐसा हज़ारो वर्षों तक चला। यहां तक की 'संस्कृति की पालना' कही जाने वाली दजला-फरात की घाटी भी लोगो को छोड़नी पड़ी। यदि मृदा की ओर ध्यान गया तो उसकी उर्वरता के कारण कीमियागर से लेकर आधुनिक मृदाविज्ञानी तक इस ओर आकृष्ट रहे हैं।

अमरीकी मृदाविज्ञानी हिलगार्ड ने अत्यंत विचारोत्तेजक परिभाषा दी, जिसके अनुसार मिट्टी पादप वृद्धि के लिए उत्तम माध्यम के रूप में है। तो क्या एक शीशे की बोतल में भरा पोषक विलियन भी मिट्टी है? नहीं। आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व रूसी वैज्ञानिक 'वैसिलाई वैसिलीविच डाकुशेव' (1846-1903) संभवतः पहला मृदाविज्ञानी था जिसने मृदा को स्वतंत्र प्राकृतिक पिण्ड के रूप में पहचाना। दुर्भाग्यवश भाषा की जटिलता के कारण ये विचार यूरोप तथा अमरीका के अंग्रेज़ीदाँ विज्ञानियों तक पहुंच नहीं पाए। 1914 में जब इन विचारों का पहले जर्मन मे और बाद में अंग्रेज़ी मे अनुवाद हुआ तब मृदाविज्ञान की नींव पड़ी। मृदाविज्ञान हमें बताता है कि मृदा एक पृथक् प्राकृतिक पिण्ड है जिसके अंग सुनिश्चित हैं, उनमें से प्रत्येक के भौतिक, रासायनिक तथा जैव गुणधर्म हैं। ये सारे अंग परस्पर जुड़े हुए तथा एक दूसरे पर आश्रित हैं।

मृदाविज्ञान के जन्मदाता डाकुशेव ने मिट्टी को प्रकृति का चौथा साम्राज्य(Fourth Kingdom) माना है और वे मिट्टी को परमाणुओं का नवीन विचित्र संसार बताते हैं। हमने जिस प्रकृति नटी के द्वारा भूमि सुंदरी के जन्म और विकास की कल्पना की है, वह भी इसी विचारधारा के अनुकूल है। डाकुशेव ने बड़े ही कौशल से लीबिग जैसे रसायनज्ञ की मिट्टी विषयक परिभाषा का खण्डन करते हुए मिट्टी को प्राकृतिक पिण्ड के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की। उसकी संकल्पना के अनुसार ही मृदा परिच्छेदिका को मिट्टी की विशिष्टता मान लिया गया।

पृथ्वी का अंतःभाग शांत है। उसमे क्रिस्टलों (खनिजों के) का नीरव वितरण होता रहता है, लेकिन पृथ्वी की ऊपरी सतह पर विप्लव का साम्राज्य है जिसमें विरोधी शक्तियाँ लगी हुई हैं। शक्तियों का सघर्ष चलता है, ताप बदलता है और विनाश की लीला चलती है। कहां नीचे का नीरव साम्राज्य, कहां ऊपर का अराजकतामय वातावरण, कहां निश्चित क्रिस्टल संरचनाएं, कहां उनके विखण्डित अंग, आदि नवीन गत्यात्मक प्रणाली (Dynamic System) के रूप मे प्रमुख अंग बन जाते हैं। काल की चक्की में बड़े-बड़े शैल पिस कर छोटे-छोटे कण बन जाते हैं, इतने छोटे कि आंख से भी नहीं दिखते। इन्हें कोलाइड (Colloid) कण की संज्ञा प्रदान की जाती है। यह स्थूल से सूक्ष्म की दिशा में यात्रा है। विराट से सूक्ष्म की अंनत यात्रा। कहां पृथ्वी के गर्भ का नीरव व्यवस्थित संसार, कहां भूपृष्ठ के नन्हें-नन्हें कोलाइडों का अव्यवस्थित अराजक संसार। इन कणों में इतनी गति, इतनी शक्ति भर जाती है कि इनसे जीवन का उदय होता है और सूक्ष्मजीवाणु से लेकर मनुष्य तक का प्रादुर्भाव होता है। मिट्टी पूरे विकासवाद की स्थली बन जाती है। हमने यदि इसे सुंदरी माना तो ठीक ही तो किया।

मिट्टी का विकास हो जाने पर वह एक नहीं, अनेक रूपों में दिखाई देती है। मिट्टी तरुणी की अनेक सहेलियाँ, सहचरियाँ तथा पड़ोसिनें होती हैं। वह कभी अकेली नहीं रहती। एक छोटे से खेत में 3-4 तरह की मिट्टी मिल जाती हैं। मिट्टी अनेक गुणो, लक्षणों, विलक्षणताओ से संपन्न है। यह नानागुणसंपन्न उस युवती के समान है, जो अपनी सहेलियों के अनुरूप होकर भी भिन्न होती है। वह हमारे पालन, पोषण, सुरक्षा आदि के अनुसार बड़ी होती है।

मृदा या मिट्टी प्राकृतिक पिण्ड है अतः लंबाई, चौड़ाई तथा गहराई से समन्वित होती है। उसकी एक परिच्छेदिका होती है। यह तो मिट्टी की जन्मकुण्डली है, उसका प्रलेख है, उसका इतिहास है। जो लोग मिट्टी के बारे में जानना तथा पढ़ना चाहते हैं उनके लिए इस परिच्छेदिका में मिट्टी का समुचा इतिहास मिलेगा। सचमुच परिच्छेदिका मिट्टी के विकास की जीवन लेखा है। यह मिट्टी युवती का मुखमण्डल ही नहीं, उसके मस्तक की भाग्यरेखाओं से युक्त संपूर्ण आनन है। □□

6

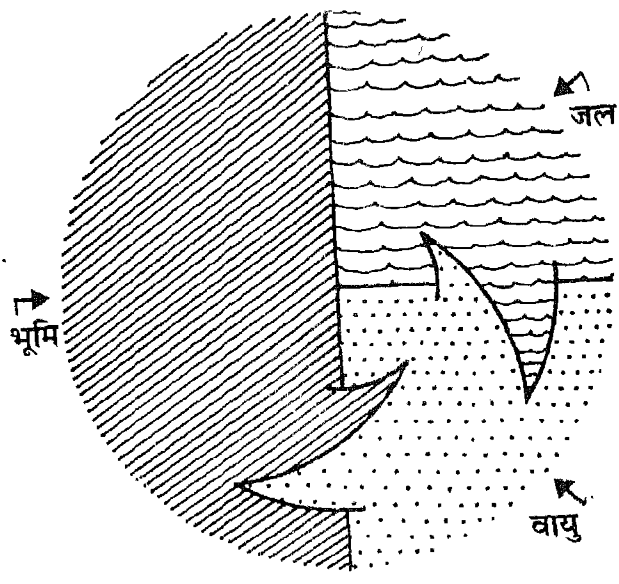
मिट्टी का रूप रंग

यदि मनुष्य के बाह्य रूपरंग का वर्णन करना हो तो उसकी ऊंचाई या कद, उसका भार, उसका रंग, उसके नाक-नक्श को बतलाया ही जाएगा, साथ ही उसके अभ्यंतर से उसके बाह्य रूप को जोड़ने का प्रयत्न करना होगा। मनुष्य सजीव प्राणी होने के कारण श्वास लेता है, जब-जब उसे प्यास लगती है तो वह पानी पीता है, भूख लगती है तो भोजन करता है और सब से बड़ी विशेषता यह है कि वह इधर-उधर चलता-फिरता है।

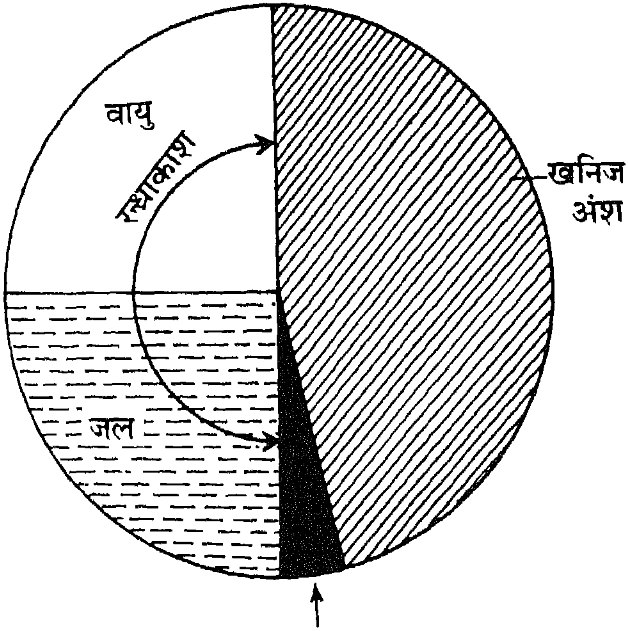
हमने मिट्टी के जन्म से लेकर उसके बड़े होने की कथा कह सुनाई है। उसे मानवी रूप देते समय हमने बारंबार उसमें प्राण या जीव होने की बात दुहराई है। हमने उसकी उर्वरता की बातें बताकर उसे और भी जीवंत बना दिया है। किंतु यदि हम इस मानवी के बाह्य रूपरंग का वर्णन न करें, यदि हम उसकी अन्य गतिविधियों पर दृष्टिपात न करें तो शायद यह सारा साम्य या रूपक निरर्थक होगा। हम कभी इस ठिगनी, कभी बौनी तो कभी बृहदाकार मिट्टी तरुणी के रूपरंग के प्रसंग में उसके कणकण, रोमरोम का वर्णन कर सकते हैं, उसके भार का वर्णन कर सकते हैं, उसकी श्वासक्रिया का अवलोकन कर सकते हैं, उसकी प्यास, उसकी भूख का भी लेखाजोखा कर सकते हैं। चाहें तो हम उसके शरीर का ताप ज्ञात कर सकते हैं। लेकिन यदि आप पूछें कि क्या इतने पर भी यह चल-फिर सकेगी? तो उत्तर होगा वैसे तो वह उठकर कभी भी चलने वाली नहीं, अचला जो है किंतु प्रतिकूल परिस्थितियों में मिट्टी का स्थानान्तरण संभव है; यह अपरदन या भूक्षरण कहलाता है।

हम इस रूपरंग के प्रसंग में मिट्टी के उन कतिपय महत्वपूर्ण गुणों का वर्णन करना चाहेंगें जो 'भौतिक गुण' के नाम से विख्यात हैं। मिट्टी की एक परिच्छेदिका होने से वह निश्चित

'आयतन' घेरती है, जिसमें ठोस भाग के अतिरिक्त वायु तथा जल का भी अंश रहता है। इस प्रकार मिट्टी में ठोस, द्रव या वायव्य, ये तीनों अवस्थाएं साथ-साथ पाई जाती हैं। अतएव यदि इनमें से किसी एक को भी परिवर्तित कर दिया जाए तो शेष दो अवस्थाओं में परिवर्तित होना अवश्यंभावी है। उदाहरणार्थ, यदि मिट्टी में जल की मात्रा बढ़ जाए तो वायु की मात्रा घट जाएगी। मिट्टी के भीतर जल की मात्रा मिट्टी के कणों के आकार, उनके विन्यास तथा उनके संयोजक पदार्थों पर आश्रित होती है। यदि मिट्टी में कणों का अनुपात संयोजक पदार्थों की अपेक्षा अधिक हो तो वह मिट्टी 'अकार्बनिक' या 'खनिज मिट्टी' (Mineral Soil) कहलाती है। संयोजक पदार्थों में जैव पदार्थ अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते है अतः यदि मिट्टी में जैव पदार्थ की मात्रा अधिक हो तो कणो का अनुपात अपेक्षतया न्यून होगा और ऐसी मिट्टी 'जैव मिट्टी' या 'कार्बनिक मिट्टी' (Organic Soil) कहलाती है। मिट्टी में ज़ल या वायु अथवा जल तथा वायु की आपेक्षिक मात्रा मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करेगी।



चित्र 12(अ) — स्थल मण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल



चित्र 12 (ब) — कार्बनिक पदार्थ

जब उपयुर्क्त तीनों अवस्थायें एकत्र हो जाती हैं तो मिट्टी में कुछ विशेष गुण आ जाते हैं। ऐसे गुण भौतिक गुण कहलाते हैं। इन गुणों का मूल्यांकन आँखों से देखकर या स्पर्श द्वारा किया जा सकता है और इनका मापन आकार, तीव्रता या सामर्थ्य द्वारा हो सकता है। मिट्टी के भौतिक आचरण बताने वाले ये गुण 'मृदा भौतिकी' (Soil Physics) के विषय बन चुके हैं।

ये भौतिक गुणधर्म इसलिए लक्षित होते हैं क्योंकि मिट्टी जिन खनिज कणों से बनी है वे विभिन्न आकार के होते हैं और मिट्टी का जैव अंश इन कणों के साथ (विशेषतया मृत्तिका या क्ले के साथ) मिलकर विशेष प्रकार की संरचनाओं को जन्म देता है जिन्हें मृदा गठन या मृदा विन्यास कहते हैं। फिर जल और वायु के संसर्ग से अन्य अनेक गुण विकसित होते हैं। ये भौतिक गुणधर्म कई बातों पर निर्भर करते हैं:

1. मिट्टी के कणो की प्रकृति तथा उनकी आकृति का वितरण;
2. कोलाइडी पदार्थों (कोलाइड-अत्यंत सूक्ष्म आकार के कण यथा मृत्तिका) की उपस्थिति;
3. मिट्टी का विन्यास या संरचना,
4. नमी या आर्द्रता।

जिस भांति मिट्टी के कुल आयतन में कोटिशः कण विद्यमान रह कर परस्पर जल, वायु, ताप द्वारा प्रभावित होते हैं वह मृदा भौतिकी का क्षेत्र है। कणों के आपेक्षिक आकार, भार, रंग, कणों का पारस्परिक समुच्चयन, समुच्चयन के फलस्वरूप उनके आयतन, वायु, जल आदि मे परिवर्तन, कणों के बीच जल का संचरण; ये अनेक गुण मिट्टी के भौतिक गुणो के अंतर्गत समाविष्ट हैं।

यद्यपि ये गुण मिट्टी की उर्वरता या उत्पादकता को नहीं बताते किंतु पौधों के उगने के लिए मिट्टी की उपयुक्तता का बोध अवश्य कराते हैं। मिट्टी के समस्त भौतिक गुणधर्मों की जानकारी होने पर यह कहा जा सकता है कि कोई मिट्टी पौधों के उगने के लिए उपयुक्त है अथवा नहीं। इसका कारण यह है कि खनिज तत्वों के अतिरिक्त पौधो को समुचित वायु एवं जल की आवश्यकता होती है। यदि इनकी पूर्ति उचित ढंग से नहीं हो पाती तो मिट्टी रासायनिक रूप से कितनी ही उपयुक्त क्यों न हो, उसमें सफलतापूर्वक फसले उत्पन्न नहीं की जा सकतीं।

मिट्टी के भौतिक गुणधर्मों की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान प्रारंभ से रहा है। जर्मनी के अनेक वैज्ञानिकों ने उन्नीसवीं शती में (1833 से 1898 ई. तक) मिट्टी के भौतिक गुणधर्मो का अध्ययन किया। इनमें 'शुब्लर' 'शुमाकर' तथा 'वोलनी' के नाम प्रमुख हैं। इसी काल में अमरीका में 'हिलगर्ड', 'जानसन' 'किंग' आदि ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया। बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही भौतिक गुणधर्मों के अंतर्गत मृदा विन्यास, जल वितरण, मृदा ताप जैसे विषयो पर ध्यान दिया गया। अब तो मृदा भौतिकी गणित और भौतिकी का मिश्रित रूप धारण कर चुकी है।

भौतिक गुणधर्मों के अंतर्गत हम निम्निलिखित 12 गुणों पर विचार कर सकते हैं:

1. मिट्टी का घनत्व 2. मिट्टी में कणों का आकार एवं उनकी संख्या

3. इन कणों का विन्यास 4. कणों का आंतरिक क्षेत्रफल
5. मिट्टी की सरंधता 6. मिट्टी का संकुचन एवं प्रसरण
7. मिट्टी की सुघट्यता 8. संसृजन 9. मिट्टी का जल या मृदा जल
10. मृदा वायु 11. मृदा ताप तथा 12. मृदा रंग।

घनत्व भार एवं आयतन का अनुपात है। जैसा कि बताया जा चुका है, मिट्टी के कणों के बीच में वायु तथा जल उपस्थित है अतः यदि प्राकृतिक अवस्था में ही मिट्टी के एक खण्ड को निकाल कर तौला जाए और उसका आयतन ज्ञात कर लिया जाए तो मिट्टी का घनत्व निकाला जा सकता है। किंतु यदि मिट्टी को सुखाकर उसे कणों में पृथक करके फिर से घनत्व निकाला जाय तो वह भिन्न होगा। पहले वाला घनत्व 'आभासी घनत्व' है और दूसरा 'वास्तविक'। आभासी घनत्व खनिजों की किस्म एवं उनकी मात्रा पर एवं जैव अंश पर निर्भर करता है। सामान्यतः मिट्टियों का आभासी घनत्व 1.7 होता है किंतु बालू के अधिक होने या मिट्टी में जैव अंश अधिक होने पर उसमें बढ़ती या घटती होती रहती है। स्मरण रहे कि 1.7 से अधिक आभासी घनत्व यह बताता है कि मिट्टी अत्यंत सघन है। इसमें पौधों की जड़ें प्रवेश नहीं कर सकती है और वायु संचार भी कम हो जाता है। इंजीनियरों को अधिक सघन मिट्टी की तलाश सड़कें या इमारतें बनाते समय रहती है। एक बार मिट्टी का आभासी घनत्व ज्ञात हो जाने पर प्रति हेक्टर क्षेत्रफल की मिट्टी का भार ज्ञात किया जा सकता है। सामान्यतः प्रति हेक्टर मिट्टी का भार 1000 टन (2000000 कि०ग्रा०) माना जाता है। यह भार मिट्टी में उर्वरक डालते समय तथा अन्य शोध कार्यों के लिए महत्वपूर्ण मात्रक है।

मिट्टी का वास्तविक घनत्व मिट्टी में प्राप्त खनिजों के (विशिष्ट) घनत्वों पर निर्भर करता है। प्रमुख खनिजों के विशिष्ट घनत्व* इस प्रकार हैं:

क्वार्ट्ज 2.65, आर्थोक्लेज 2.56, मैग्नेटाइट 5.0, एम्फिबोल 2.9-3.4, पाइरोक्सीन 3.3-3.5 कैल्साइट 2.7 ।

इस प्रकार विभिन्न खनिजों के विशिष्ट घनत्व 2.33 से लेकर 5.1 तक पाये गए हैं। लेकिन

* कणों का घनत्व उनके आकार या रंनध्राकाश से नहीं बदलता।

मिट्टी में खनिज कणों की विभिन्न मात्राएं रहती है, साथ ही जैव पदार्थ भी रहता है जिसका (विशिष्ट) घनत्व 1.2-1.3 है। फलस्वरूप मिट्टी में खनिज कणों या जैव अंश की न्यूनता या अधिकता के अनूसार मिट्टी का वास्तविक घनत्व घटता-बढ़ता रहता है। इसीलिए सामान्य मिट्टी का वास्तविक घनत्व 2.5 से 2.7 तक होता है यह मान आभासी घनत्व से डेढ गुना है, किन्तु इसकी जानकारी से कोई विशेष कार्य नहीं सधता। वास्तविक घनत्व ज्ञात करने के लिए मिट्टी से सारी वायु निकालनी होती है इसके लिए मिट्टी को जल के साथ गरम करते हैं और जब कण विलग हो जाते हैं तब उनका आयतन निकाला जाता है।

यदि किसी मिट्टी में 'कणों की संख्या' गिनना चाहें तो यह कार्य कठिन होगा, थोड़ी ही देर बाद हम थक जाएंगे और कह देंगे, असंख्य कण हैं। कवि या लेखक प्रायः अतिशयोक्ति का सहारा लेकर सीमित वस्तुओं को भी असीम बताते हैं लेकिन विज्ञान में ऐसी कल्पना या अतिशयोक्ति की गुंजाइश नहीं होती।

मिट्टी में छोटे या बड़े दोनों प्रकार के कण विद्यमान रहते हैं। यदि मिट्टी के निश्चित भार में कणों की संख्या ज्ञात करनी हो तो मिट्टी के भार में औसत आकार वाले एक कण के भार से भाग दे देने पर उनकी संख्या प्राप्त हो सकती है।

$$\text{कणों की संख्या} = \frac{\text{मिट्टी का भार (ग्राम)}}{\text{एक कण का भार (ग्राम)}}$$

किसी एक कण का भार गणितीय सूत्र से इस प्रकार निकलेगा

कण का भार = कण का आयतन × विशिष्ट घनत्व

$= 4/3\, \pi$ (व्यासार्द्ध सेमी. में) $r^3 \times 2.65$

किसी एक आयतन में जितने ही अधिक कण निकलेंगे, वे कण उतने ही सूक्ष्म कण होंगे। कणों की यह सूक्ष्मता बालू जैसे बड़े कण और मृत्तिका जैसे सूक्ष्म कण के अंतर को बताने में सहायक होती है।

कणों की संख्या ज्ञात कर लेने के बाद यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि ये कण कितना 'क्षेत्रफल' घेरे हुए हैं।

किसी एक आयतन या भार वाली मिट्टी में कणों के सम्पूर्ण पृष्ठ (Total Surface) को मिट्टी का 'आंतरिक क्षेत्रफल' या 'मिट्टी का पृष्ठ' क्षेत्रफल कहते है। यह वर्गफुट अथवा एकड़ प्रति घनफुट के रूप में व्यक्त किया जाता है।

यदि हम मिट्टी के कणों को गोलाकार मान ले तो यह क्षेत्रफल आसानी से निकल आता है क्योंकि गोलाकृति का पृष्ठ उसके व्यासार्द्ध के वर्ग पर निर्भर करता है:

इस प्रकार वर्गों का पृष्ठ क्षेत्रफल = $4 \pi r^2 n = \pi D^{2n}$

जहाँ n कणों की संख्या, r व्यासार्द्ध है, D व्यास है।

(टिप्पणी— गोलाकृति का आयतन = $4/3 \pi r^3$ विशिष्ट पृष्ठ =

$$\frac{\text{कण का पृष्ठ क्षेत्रफल}}{\text{कण का आयतन}} = \frac{4 \pi r^2}{4/3 \pi r^2} = \frac{3}{r}$$

यदि गोलाकृति का व्यास क्रमशः छोटा होता जाए तो आंतरिक क्षेत्रफल में विलक्षण प्ररिवर्तन देखा जाता है। विशिष्ट पृष्ठ मिट्टी के कण के व्यास के व्युत्क्रमानुपाती होता है फलस्वरूप जो कण जितना ही छोटा होगा उसका विशिष्ट पृष्ठ उतना ही अधिक होगा।)

गोलाकृति का व्यास	1घन सेमी. में गोलों की संख्या	आंतरिक क्षेत्रफल
1 सेमी.	1	3 146 सेमी.^{2}
1/2 सेमी.	8	6.2832 सेमी
1/4 सेमी	64	12.5664 सेमी
1/8 सेमी.	512	25.1328 सेमी.

इस प्रकार से गणना करने पर 1 घनफुट मिट्टी में लगभग 4 एकड़ का संपूर्ण आंतरिक क्षेत्रफल निकलेगा। चिकनी मिट्टी (मृत्तिका) का आन्तरिक क्षेत्रफल सर्वाधिक होगा किन्तु बलुही मिट्टी में या दुमट में यह क्षेत्रफल कम होगा। इस प्रकार यदि एक घनफुट का आंतरिक क्षेत्रफल औसतन 70000 वर्गफुट मान लिया जाए तो 1 फुट गहराई तक 1 एकड़ मिट्टी में 109 वर्गमील क्षेत्रफल के कण होंगे। इस क्षेत्रफल में 3 बड़े-बड़े शहर आबाद हो सकते हैं। यदि यह मान लिया जाए कि पौधों की जड़ें 4 फुट की गहराई तक नीचे जाती हैं तो वे लगभग

436 वर्गमील / एकड़ के क्षेत्रफल में फैले कणों के बीच से जल शोषित कर सकती है।

यह आंतरिक क्षेत्रफल कणों की संख्या के अनुसार घटता बढ़ता है। जितना अधिक उनका क्षेत्रफल होगा उतनी ही अधिक मात्रा में जल तथा पोषक तत्वों का अवशोषण कणों के पृष्ठ पर होगा। इस प्रकार यह आंतरिक क्षेत्रफल वास्तव में कणों के कार्य-क्षेत्र का द्योतक है।

मिट्टियों के कणों के बीच-बीच में वायु का भी स्थान रहता है। यह वायु स्थान या 'वातस्थान' मिट्टी की सरंध्रता (Porosity) को बताता है। यह ठोस कणों एवं उनके बीच के स्थानों के अनुपात पर निर्भर करती है। ऐसा पाया गया है कि मिट्टी में जितना ही अधिक जैव अंश रहता है, उस मिट्टी में उतनी ही संरध्रता पाई जाती है। अतएव मिट्टी में जितना ही कम जैव अंश रहता है, संरध्रता भी उतनी ही कम होती है। साथ ही मिट्टी के कण जितने सूक्ष्म होंगे, सरंध्रता उतनी ही अधिक होगी। जुताई करने से भी सरंध्रता बढ़ती है।

सरंध्रता को रंध्राकाश (*Pore Space*) भी कहा जाता है। बालू में रंध्राकाश कम होता है क्योंकि रंध्र बड़े होते हैं अतएव रंध्रों की संख्या कम होती है। इसके विपरीत मृत्तिकाओं में कई गुने अधिक रंध्र होते हैं किंतु ये रंध्र अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इनमें से होकर जल का प्रवाह बड़ी ही कठिनाई से हो पाता है।

सामान्यतया मिट्टी का रंध्राकाश वायु तथा जल से भरा रहता है। यदि यह मान लिया जाए कि मिट्टी के सभी कण गोलाकार हैं तो इन कणों को पैक करने पर जो रंध्राकाश बचेगा वह पूरे आयतन का 26 प्र.श. होगा किंतु यदि इन कणों का समुच्य हो जाए, जैसा कि प्रकृति में होता है तो यह रंध्राकाश घटने के बजाए बढ़ जाता है। अब इसकी मात्रा 40-60 प्र.श. हो जाती है। इसीलिए मिट्टियों को दानेदार बनाने से उनका वातन (Aeration) बढ़ता है, कारण कि रंध्राकाश बढ़ जाता है किंतु यदि किसी कारणवश ये बड़े दाने पुनः टूट जाएं और मिट्टी एक दानेदार (Single grained) हो जाए अर्थात् कणों में विलग हो जाए तो रंध्राकाश इतना घट जाएगा कि उसमें फसलें ठीक से उग भी नहीं सकेंगी।

यह रंध्राकाश मिट्टी की पूरी परिच्छेदिका में रहता है, कभी नीचे जाने पर घटता है तो कभी बढ़ता है।

किंग नामक वैज्ञानिक ने विभिन्न मिट्टियों की सरंध्रता ज्ञात करके निम्नलिखित मान दिये हैं: बलुही मिट्टी 32.5, दुमट 34.5, भारी दुमट 44.1, दुमट मृत्तिका 45.3, भारी मृत्तिका

52.9। जैव अंश रहने पर यह सरंध्रता 60 प्र.श. तक हो जाती है।

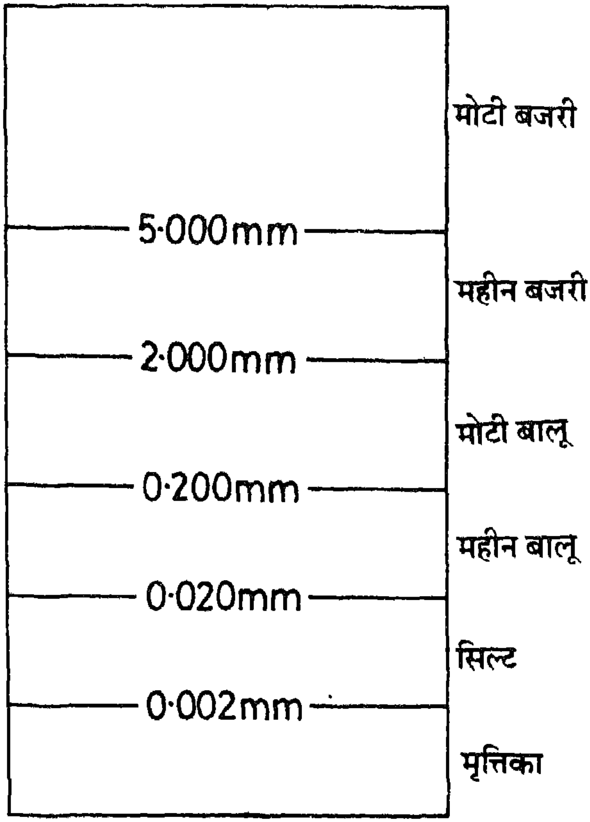
मिट्टी में कणों के आकार एक-जैसे नहीं होते। इनमें से जो कण बड़े होते हैं वे आंख से दिखते हैं, ऐसे कण 'बृहदकण' कहलाते हैं किंतु जब कण छोटे हो जाते हैं तब उनको आंख से देख पाना असंभव हो जाता है। ऐसे कण सूक्ष्म कण कहलाते हैं। इस प्रकार बड़ेबड़े कणों से सूक्ष्म कणों के बीच कई अवस्थाएं हैं। यह कितना विचित्र लगता है कि मिट्टी के कुछ कण विद्यमान होते हुए भी नहीं दिखते, ठीक उसी तरह जिस तरह सूक्ष्मजीव नहीं दिखाई देते। लेकिन न दिखने से उनका अस्तित्व तो मिटता नहीं!

इन समस्त प्रकार के कणों का आकार उनके व्यास के आधार पर ज्ञात किया जाता है। यह व्यास यद्यपि अत्यंत सूक्ष्म होता है किंतु यांत्रिक विश्लेषण द्वारा इसे ज्ञात किया जाता है। वैसे बड़े आकार के कणों को छलनी से छानकर, छलनी के छेदों का आकार ज्ञात करके कणों का आकार भी प्राप्त किया जा सकता है किंतु प्रायः 2 मिमी से बड़े आकार वाले कणों को ही इस प्रकार से विलग किया जाता है। 2 मिमी. से बड़े आकार के कण कंकड़ पत्थर के टुकड़े होते हैं, जिनकी गणना नहीं की जाती क्योंकि मिट्टी की रचना में इनका कोई विशेष महत्व नहीं होता।

कणों का आकार ज्ञात करते समय कणों को नितांत गोल माना जाता है किंतु वास्तव में वे ऐसे होते नहीं। मिट्टी के कण विभिन्न आकारों के होते हैं; कुछ गोल, कुछ चपटे, कुछ खिंचे लम्बे, कुछ सुडौल, कुछ बेडौल। लेकिन जितने ही अधिक कण गोलाकार होंगे उतने ही ढंग से उनका आकार ज्ञात हो सकेगा।

यांत्रिक विश्लेषण के आधार पर मिट्टी के कणों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है जिसे प्रायः विश्वभर के मृदाविज्ञानी स्वीकार करते हैं:

	व्यास
मोटी बालू	2-0.20 मिमी.
महीन बालू	0.2-0.02 मिमी.
सिल्ट	0.02-0.002 मिमी.
मृत्तिका	0 002 मिमी. से कम



चित्र 13 — मिट्टी के कणों का विन्यास

इस प्रकार मिट्टी में केवल तीन प्रकार के कण हैं; बालू, सिल्ट (गाद) तथा मृत्तिका। बालू के अंतर्गत मोटी तथा महीन— ये दो वर्ग मान लिए गये हैं। इन कणों के व्यास में क्रमशः दस दस गुनी कमी आती जाती है और 0.002 मिमी. आकार इतना सूक्ष्म होता है कि आंख से नहीं देखा जा सकता। इस अत्यंत सूक्ष्म आकार को u म्यू के रूप में व्यक्त कर मृत्तिका का आकार 2 म्यू से कम कहकर पुकारा जाता है, सिल्ट का 2 म्यू से अधिक। अतएव सूक्ष्मता की विभाजक रेखा 2 म्यू है। यह म्यू 0.001 मिमी. के तुल्य इकाई है। सूक्ष्मजीवों

के आकार को भी इसी इकाई द्वारा व्यक्त किया जाता है।

किसी मिट्टी में बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका के कणों का अनुपात 'मिट्टी का गठन' (Soil Texture) कहलाता है। जब हम कहते हैं कि मिट्टी का गठन ऐसा है तो हमारा अभिप्राय मिट्टी की (ऊपरी सतह में)* इन चार आकार वाले कणों की सापेक्ष प्रतिशतता से होता है। प्रकृति में यह अनुपात निश्चित नहीं है। एक खेत में भिन्न भिन्न स्थानों मे मिट्टी का गठन भिन्न हो सकता है। कभी-कभी बालू या सिल्ट नाम 'कणाकार' को न सूचित कर मिट्टी को सूचित करता है, लेकिन यह समझना होगा कि प्रकृति में कोई ऐसी मिट्टी नहीं जिसमें केवल एक ही तरह के कण पाए जाएं।

प्रायः गठन बताने के लिए मिट्टियों को हल्की या भारी कहा जाता है लेकिन ये शब्द भ्रामक हैं। हल्की मिट्टी का अर्थ होगा मिट्टी में 80 प्र.श. बालू (मोटी + महीन) की उपस्थिति (इससे मिट्टी भले ही अत्यंत सघन हो सकती है, घनत्व 2.7 तक) और भारी मिट्टी का अर्थ होगा मिट्टी में सिल्ट तथा मृत्तिका अंश का अधिक होना (भले ही घनत्व कम हो)। कभी कभी हल्की मिट्टी को स्थूल गठन वाली (Coarse textured) कहा जाता है और भारी मिट्टी को महीन (Fine) गठन वाली मिट्टी।

गठन ज्ञात करने के लिए किसान अपने हाथ की दो अंगुलियों के बीच में खेत की मिट्टी उठाकर रगड़ता है और स्पर्श की अनुभूति के अनुसार वह चट बता देता है कि उसकी मिट्टी कैसी है। यह अनुभूति विधि (Feel method) कहलाती है। मृदा भौतिकी में इस विधि को मान्यता प्राप्त है। पूरी विधि इस प्रकार है:

बाएं हाथ के अँगूठे तथा तर्जनी के बीच में थोड़ी सी सूखी मिट्टी लो। अब इस पर कुछ बूंदें जल की डालो और अंगुलियों के बीच में मिट्टी को तब तक मलते जाओ जब तक मुलायम गोली न बन जाए। अब उसे जोर से दबाकर निचोड़ो।

अब स्पर्श का अनुभव करो और ध्यान में लाओ कि कितनी जल्दी गोली बनी? कितनी किरकिराहट है मिट्टी में? यह भी ध्यान रखो कि दबाने पर मिट्टी का डोरा बन गया या वह टूट गया? अब निम्नलिखित चार्ट की सहायता से मिट्टी का गठन ज्ञात कर लोः

यह आवश्यक नहीं है कि मिट्टी का गठन, सम्पूर्ण परिच्छेदिका मे एक सा हो। B सस्तर में मृत्तिका के संचित होने से गठन मे पर्याप्त अंतर पाया जाता है। इसके कारण जल के सचयन तथा जड़ों के नीचे जाने मे बाधा आ सकती है।

गठन परीक्षण चार्ट

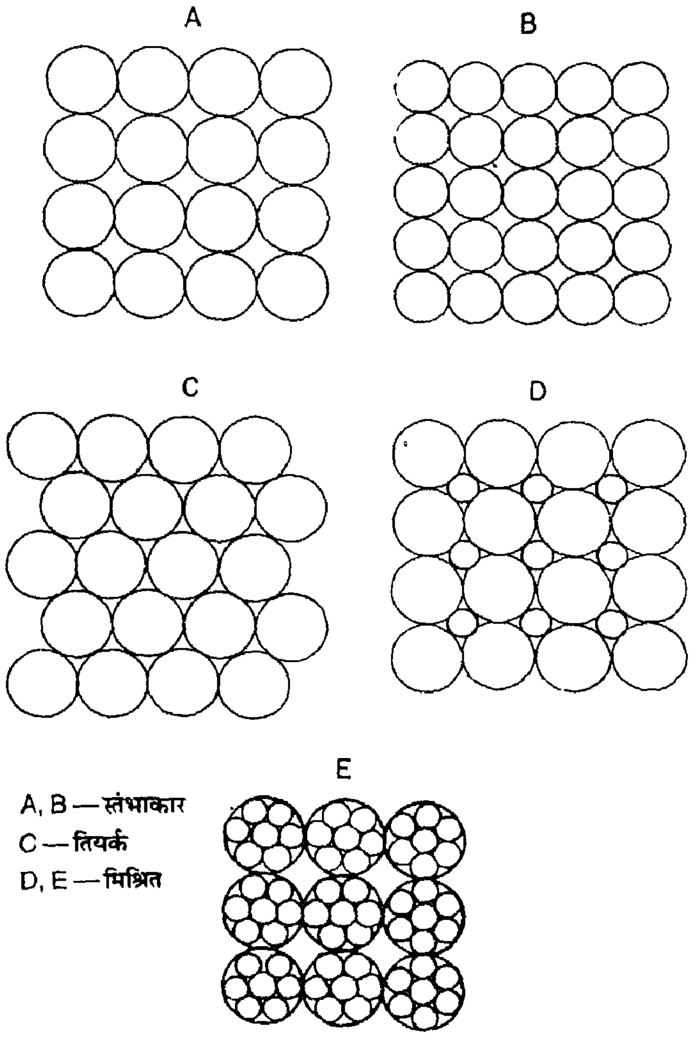
गठन	स्पर्श की अनुभूति	गोली निर्माण	हाथ में चिपकना	डोरा बनना
1. बालू है, यदि	किरकिरा	नहीं बनी	नहीं चिपकी	नही बना
2. दुमट है, यदि	न तो किरकिरहाट है न चिकनाहट	गोली बन गई	अंगुलियों में-चिपक गई	नहीं बना
3. सिल्टी दुमट है, यदि	मक्खन जैसी चिकनाहट	गोली बन गई	,,	डोरा बनने लगा
4. मृतिका है, यदि	,,	गोली बनी जो सूखने पर मुश्किल से टूटती है।	,,	1-3″ लम्बे डोरे बने

उपर्युक्त गठन में दुमट (Loam) नया शब्द आया है। वस्तुतः यह मिट्टी में बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका के एक विशेष अनुपात का द्योतक है। प्रायः दुमट मिट्टियाँ अच्छी मानी जाती हैं।

* स्मरण रहे कि मिट्टी में उपर्युक्त तीन प्रकार के कण स्वतंत्र रूप से विद्यमान नहीं रहते। हमने यांत्रिक विश्लेषण द्वारा उनकी, प्रतिशतता ज्ञात करने की बात कही है। प्रकृति में (मिट्टी में). ये विभिन्न कण, छोटे या बड़े एकसाथ पाए जाते हैं और प्रायः सुनियोजित ढंग से व्यवस्थित होते हैं। मिट्टी में कणों की यह निश्चित व्यवस्था 'मृदाविन्यास' या 'मृदासंरचना' (Soil Structure) कहलाती है। एक ही गठनवाली दो मिट्टियों के गुण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं क्योंकि उनके कण भिन्न प्रकार से व्यवस्थित हो सकते हैं।

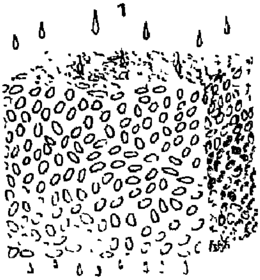
सैद्धांतिक रूप से कणों का विन्यास या उनका संतुलन दो प्रकार का हो सकता है: 'स्तंभाकार' (Columnar) तथा तिर्यक (Oblique)। स्तंभाकार विन्यास में कोई भी गोल कण अपने चारों ओर से चार ऐसे ही कणों के संपर्क में रहता है जबकि तिर्यक विन्यास मे प्रत्येक कण कम से कम छह अन्य कणों के संपर्क में रहता है। यह ज्ञात है कि प्रथम प्रकार के विन्यास में रिक्त स्थान या रंध्राकाश (Void) अधिक रहता है और दूसरे में कम। ये रंध्राकाश क्रमशः 47.64 प्र.श. तथा 25.95 प्र.श. हैं।

*मृदा संरचना की इकाई पेड (Peds) है। बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका कणों का वह प्राकृतिक समूह जो मिट्टी में पाया जाता है और रहा आता है पेड कहलाता है।



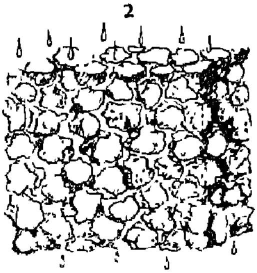
चित्र 14 — कणों का विन्यास

1



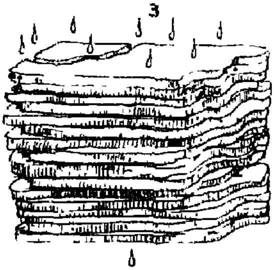
1. एकाकी दानेदार = जल तुरन्त निकल जाता है

2



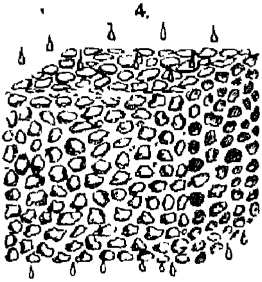
2. घनाकार विन्यास = जल सरलता से निकल जाता है

3



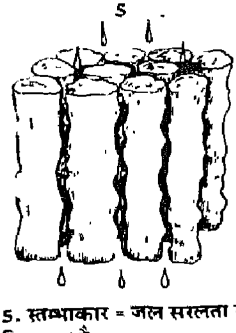
3. पट्टित विन्यास = जल मंद गति से निकल जाता है

4.



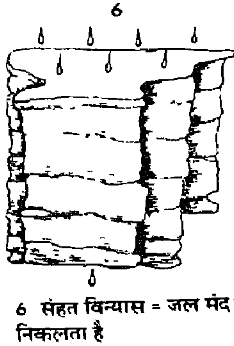
4. दानेदार = जल जल्दी से निकलता है

5



5. स्तम्भाकार = जल सरलता से निकलता है

6



6 संहत विन्यास = जल मंद गति से निकलता है

चित्र 15 — मिट्टी का विन्यास

किंतु विशुद्ध रूप से इन विन्यासों का मिल पाना कठिन है। प्राय. छोटे कण इन रिक्त स्थानों में विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार दो क्रमों के मिश्रण से 'मिश्रित विन्यास' प्राप्त होता है। स्मरण रहे कि इस प्रकार के मिश्रण से सरंध्रता में वृद्धि आती है। यही कारण है कि स्तंभाकार विन्यास में जो रंध्राकाश 47.64 प्र.श. था वह बढ़कर 72.58 प्र.श. तक हो जाता है और तिर्यक विन्यास में 45.17 प्र.श. तक हो जाता है।

कुछ लोग विन्यास के प्रसंग में दानेदार (Granular)) तथा सघन (Compact) जैसे विन्यासों की चर्चा चलाते हैं किंतु वास्तव में ये मिश्रित विन्यास ही हैं।

स्मरण रहे कि यदि मृदा में संरचना न हो तो भारी मिट्टियाँ फसलें न उगा पाएं। यदि मिट्टी संरचना विहीन हो जाए तो वह व्यर्थ हो जाएगी। संरचना के कारण न केवल जल, वायु का संचार प्रभावित होता है अपितु सूक्ष्मजीवों की गति भी प्रभावित होती है। इसीलिए मिट्टी में 'उपयुक्त संरचना' पर बल दिया जाता है। पौधों की जड़ों के ढंग से बढ़ने, ठीक से वायु संचार होने तथा पौधों के जीवन के लिए जल निकास (Drainage) को अनुकूल बनाए रखने में उपर्युक्त संरचना की आवश्यकता होती है। इस प्रकार न केवल ऊपरी मृदा में अपितु अवमृदा में भी संरचना का महत्व है।

अच्छी या बुरी संरचना में अंतर बताने के उद्देश्य से संरचना के कुछ विभाग किए जाते हैं जिनके गुणधर्म भी निश्चित कर दिए गए हैं। यही नहीं इन संरचनाओ के स्थायित्व को बताने के लिए उनमें ग्रेड (Grade) बना दिये गए हैं, यथा 0, 1,2 तथा 3। ये ग्रेड वैसे ही है जैसे आजकल विद्यार्थियों को परीक्षा में उनकी योग्यता को देखते हुए प्रदान किए जाते हैं। 0 ग्रेड या शून्य ग्रेड का अर्थ है कि मिट्टी संरचनाविहीन है, अर्थात् उनके सारे कण बिखरे हुए हैं, उनमें किसी प्रकार का संघट्टन या समूहन नहीं है। किंतु ज्यो-जयों कणों में समूहन बढ़ता जाता है उसी तरह उनका स्थायित्व बढ़ता जाता है और उसी क्रम से उनका ग्रेड भी। अधिकांश मिट्टियां ग्रेड 2 के अंतर्गत आती हैं।

मृदा संरचना में स्थायित्व लाने के लिए कई तरह के प्रयास करने होते हैं। उदाहरणार्थ, अम्लीय मिट्टियों में चूना डालना, सामान्य मिट्टियों में हरी खाद मिलाना। यदि मिट्टियों में लवण रहें तो भी स्थायित्व बढ़ता है लेकिन सोडियम लवणों की अधिकता से बचना चाहिए क्योंकि इनसे मिट्टी ऊसर या क्षारीय बन सकती है।

यह मृदा संरचना मिट्टी का गतिशील भौतिक गुणधर्म है। यदि मिट्टियों की ठीक से देखभाल नहीं की जाती, यदि मिट्टी की अधिक जुताई की जाती है और यदि मिट्टी का अपक्षरण होता है तो इससे भूमि संरचना नष्ट हो जाती है।

प्रायः कहा जाता है कि यदि मिट्टी दानेदार हो तो पौधे सरलता से उगते हैं। यह दानेदार संरचना मिट्टी मे जैव अंश, मृत्तिका अंश तथा चूना आदि की उपस्थिति से बनती है। यदि खेतों को परती छोड़ दिया जाए और घासें उगाई जाएं तो प्रायः दानेदार संरचना को प्रोत्साहन मिलता है। खेतों को परती छोड़ने का अर्थ है उन्हें आराम देना। यह विचित्र बात देखने को मिलेगी कि जहां अन्य सभी फसलों के लिए अच्छी मृदा संरचना वांछित है, वहीं धान के लिए मिट्टी की संरचना को नष्ट करना पड़ता है। इसमें खेतों में पानी भर कर जुताई की जाती है।

फिर भी आज बहुमत इस पक्ष में है कि मृदा संरचना बनाए रखने के लिए मिट्टी को कम से कम छेड़ा जाए। इसी के फलस्वरूप एक नया नारा चला है "शून्य जुताई" का, जिसका अर्थ है न्यूनतम जुताई। यह अतिवादी दृष्टिकोण नहीं है अपितु भूमि संरक्षण पर अत्यधिक बल देने के उद्देश्य से चालू किया गया नारा है। अंततोगत्वा इससे शुभ परिणाम निकलेंगे।

आप शायद मृदा गठन तथा मृदा विन्यास या संरचना विषयक इस विवरण से झुंझला रहे हों। कुछ भारतीय मिट्टियों का मृदा गठन (यांत्रिक) विश्लेषण इस प्रकार है:

मिट्टी का नाम	बालू%	सिल्ट%	मृत्तिका%
गहरी काली मिट्टी	13	24	54
जलोढ मिट्टी	76	9	9
लाल मिट्टी	52	17	24
लेटराइटी मिट्टी	46	28	18

सामान्यतया उपजाऊ मिट्टी में 30-50 प्रतिशत बालू, 30-50 प्रतिशत सिल्ट तथा 0-20 प्रतिशत मृत्तिका पाई जाती है। दोमट के विषय में हम बता चुके हैं कि बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका में विशेष अनुपात होता है। यह इस प्रकार है, बालू 30-50 प्रतिशत, सिल्ट 10-30 प्रतिशत तथा मृत्तिका 10-30 प्रतिशत। मृदा संरचना की ही भांति मृदा का गठन भी परिवर्तनशील गुण है जो जलवायु, जुताई यंत्रों की रगड़, भूमि अपरदन, जुताई की संख्या द्वारा प्रभावित होता है। मृदा गठन मूलतः जनकशैल से सम्बद्ध होता है जिससे मिट्टी बनती है। जो मिट्टियाँ आग्नेय शैलों से जन्म लेती हैं उनमें बालू की मात्रा अधिक रहती है अतएव वे स्वभावतः बलुई होती हैं। समुद्र के किनारे या रेगिस्तान में भी मिट्टियाँ बलुही होती है। नदियों के किनारे तथा डेल्टाओं में मिट्टियाँ सिल्टयुक्त या चिकनी होंगी क्योंकि वहाँ सूक्ष्म कणों का जमाव रहता है। इस तरह यदि हम चाहें कि मिट्टी का गठन सहसा बदल जाए, तो ऐसा संभव नहीं। अतएव हमें मिट्टी के गठन के अनुसार फसलों का चुनाव करना होगा, न कि मिट्टी का गठन बदलना होगा। यथा बलुही मिट्टी के लिए गेहूं, धान आदि। जलशोषण शक्ति मिट्टी के गठन पर निर्भर करता है। बलुही मिट्टियों में जलशोषण शक्ति कम होती है अत एव सिंचाई की व्यवस्था जल्दी-जल्दी पड़ती हैं।

वातन

अच्छे विन्यास के कारण मिट्टियों में वायु का संचार सरलता से होता है। रंध्राकाशों मे जो वायु भरी रहती है, प्रारम्भ में उसका सम्पर्क वायुमंडल की वायु से रहता है और उसका भी संघटन वही होता है जो वायु का होता है। अर्थात् 80 प्रतिशत नाइट्रोजन 20.9 प्रतिशत आक्सीजन तथा 0.03 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड। किंतु कालांतर में मिट्टी के भीतर जड़ों के जैव पदार्थ के विघटन से पर्याप्त कार्बन डाइआक्साइड गैस निकलती है। इस तरह जब मिट्टी के भीतर वायु बंदी बन जाती है तो उसमें धीरेधीरे कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ने लगती है और आक्सीजन की मात्रा घटने लगती है। फलस्वरूप कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा 0.3-1 प्रतिशत हो जाती है।

मिट्टी के भीतर वायु में आक्सीजन की पूर्ति तभी संभव है जब वायुमंडल से आक्सीजन मिट्टी के भीतर पहुँचे। इस क्रिया को विसरण (Diffusion) कहते हैं। इसमें न केवल आक्सीजन भीतर जाती है अपितु कार्बन डाइआक्साइड की बढ़ी मात्रा बाहर निकलती है।

मिट्टी में वायु का यह आदान-प्रदान 'वातन' कहलाता है। बंद कमरे की वायु का शुद्धिकरण भी इसी वातन द्वारा होता है।

मिट्टी में आक्सीजन का सर्वाधिक उपयोग उसमें विद्यमान सूक्ष्मजीवों द्वारा तथा फसलों के उगते समय होता है। मिट्टी की वायु में आक्सीजन की मात्रा ऋतु के अनुसार बढ़तीघटती है। प्रायः गर्मियों में यह मात्रा अधिक होती है और जाड़ों तथा वर्षा ऋतु में कम।

कोपेकी नामक वैज्ञानिक ने मिट्टियों की वायु क्षमता को मिट्टी में उपस्थित बड़े-बड़े रंध्रों (अकेशिकीय स्थान) के तुल्य बताया है। यदि मिट्टी में 1/8 से 1/4 इंच तक के विन्यास हों तो वातन में सुविधा होती है। यदि पाटा चला दिया जाए या ट्रेक्टर से जुताई कर दी जाए तो मिट्टी पट जाती है जिससे वातन घट जाता है। किंतु गोबर की खाद डालने से वातन डेढ़गुना हो जाता है। इसी प्रकार यदि मिट्टियों का जलनिकास बढ़ा दिया जाए तो वातन बढ़ जाता है।

मिट्टी में जल की मात्रा अधिक रहने पर, यथा दलदली मिट्टियों में या धनही मिट्टियों में, वायु का संघटन एकदम बदल जाता है। उसका रूप 'बायोगैस' जैसा (जिसे चूल्हे में जलाया जाता है) हो जाता है जिसमें नाइट्रोजन (10-95 प्रतिशत), आक्सीजन (0-5 प्रतिशत), कार्बन डाइआक्साइड (1-20 प्रतिशत) के अतिरिक्त हाइड्रोजन (0-10 प्रतिशत) तथा मिथेन (1-75 प्रतिशत) गैसें भी पाई जाती हैं। धान की मिट्टियों में प्रायः सड़े अंडों की सी महक वाली गैस, हाइड्रोजन सल्फाइड भी पाई जाती है। मिट्टी में वातन की क्रिया मृदा ताप पर निर्भर करती है।

मृदा ताप

मृदा निर्माण के अंतर्गत ताप के प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख हो चुका है। यद्यपि मिट्टी का ताप वायुमंडल के ताप के अनुसार बदलता है किंतु उसका ताप वही नहीं होता।*

---

* मिट्टी का औसत ताप (सतह पर) वायु के औसत ताप से 1-5° से० अधिक रहता है

मिट्टी में जितनी भी उष्मा पहुँचती है वह एकमात्र सूर्य से प्राप्त होती है। अनुमान है कि खुले दिन में दोपहर के समय मिट्टी के प्रतिवर्गमीटर क्षेत्रफल को प्रतिघन्टे 106 कैलोरी उष्मा प्राप्त होती है। गणना की गई है कि यदि सारी उष्मा ताप बढ़ाने में प्रयुक्त हो तो प्रति घन्टे 6 इंच तक की मिट्टी का ताप 24.6 डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ जाए। किंतु वायु, जल वाष्प, कुहरा आदि के कारण सूर्य का सारा विकिरण मिट्टी तक नहीं पहुँच पाता।

मिट्टी का ताप कई कारणों से उपयोगी है, यथा बीजों के अंकुरण एवं पौधों की वृद्धि के लिए निश्चित ताप चाहिए। मिट्टी में कुछ सूक्ष्मजीवों की क्रिया ताप पर निर्भर करती है। मिट्टी में वर्तमान जल की इधर उधर गति भी ताप से प्रभावित होती है।

ताप में वृद्धि के लिए मिट्टी के खनिज कण, वायु की उपस्थिति तथा जल उत्तरदायी होते हैं। इन तीनों की अपनी अपनी विशिष्ट उष्माएं है अर्थात् जब इनको उष्मा मिलती है तब वे उसे ग्रहण करके ताप के बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस मामले में सूखी मिट्टी तथा वायु एक जैसे हैं। थोड़ी ही उष्मा से मिट्टी तप्त हो उठती है किंतु मिट्टी में जैव अंश तथा जल की उपस्थिति से मिट्टी का ताप तेज़ी से नहीं बढ़ पाता। मिट्टी के विभिन्न कण विभिन्न खनिजों से बने होने के कारण वे विभिन्न मात्रा में उष्मा का संचालन करते हैं। यदि मिट्टी को जल से सिक्त कर दिया जाए तो भी इसकी उष्माग्रहण क्षमता जल की अपेक्षा आधी होगी। किंतु यदि जैव अंश भी रहें और मिट्टी जल से सिक्त हो तो यह जल जैसा आचरण दर्शाती है।

वास्तव में शुष्क मिट्टी में या ढीली मिट्टी में उष्मा का चालन बीचबीच में वायु की उपस्थिति के कारण बाधित होता है, किंतु वायु का स्थान जल द्वारा ग्रहण किए जाने पर उष्मा चालकता बढ़ जाती है। तो भी मिट्टी में जनक शैल (जो ठोस रहता है) जैसा उष्माचालन नहीं होता। खनिजों की तुलना में जैव अंश की उष्माचालकता आधी होती है और धातुओं की तुलना में और भी कम। वस्तुतः मिट्टी की सतह जितनी उष्मा सूर्य से ग्रहण करती है उसे वह अपने संघटन के अनुसार संचालित करती रहती है। इससे मृदा परिच्छेदिका में ताप का वितरण दिन में ऊपर से नीचे की ओर होता है। स्पष्ट है कि दिन में सतह पर ताप अधिक होता है और गहराई पर कम। किंतु रात्रि के समय जब उष्मा का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है तब नीचे की परतों का ताप अधिक और सतह पर कम रहता है।

मिट्टी मे दिन रात के अनुसार ताप का जो चक्र चलता है वह विभिन्न ऋतुओ में भी चालू रहता है। जिस प्रकार मिट्टी के ताप मे दिनरात में उतार चढ़ाव देखे जाते हैं, वैसे ही ऋतुओ के अनुसार भी प्रायः मिट्टी के रंग का ताप पर प्रभाव पड़ता है। भूमि पर वानस्पतिक छाजन बढ़ाकर तथा भूमि की समुचित जल निकासी करके मिट्टी के ताप को परिवर्तित किया जा सकता है।

मिट्टी का रंग

मनुष्यों या पशुओं की चमड़ी काली, गोरी, चित्तीदार होती है। वृक्षों में उनकी पत्तियाँ प्रायः हरी, छाल मटमैली एवं फूल रंग बिरंगे होते हैं। कभीकभी रंगों का यह भेद आनुवांशिक कहा जाता है।

मिट्टियों में प्रमुखतः काले, लाल, भूरे, पीले (विरले ही), सफेद रंग मिलते हैं। तो क्या रंग भी अनुवांशिक हैं? उत्तर होगा, हां कुछ तो हैं, क्योंकि खनिजों के मूल रंग मिट्टी के कणों में रहने के कारण वैसा ही रंग प्रदान करेंगे, किंतु ये रंग जैव अंश के कारण दब जाते है, जिससे मूल रंग की पहचान नहीं हो पाती। मिट्टियों का काला भूरा रंग ह्यूमस नामक भूरे या काले पदार्थ की उपस्थिति के कारण है। वैसे भारत की काली मिट्टियों का रंग जैव अंश के कारण उतना नहीं है, जितना कि मूल खनिजों की उपस्थिति के कारण है। मिट्टियों के लाल तथा पीले रंग लौह आक्साइड के कारण होते है। जब लौह आक्साइड जलायोजित रहता है तो पीला रंग उत्पन्न होता है। खड़िया मिट्टी के कारण मिट्टयों का रंग सफेद भी हो सकता है।

सामान्यतः मिट्टी में ह्यूमस एवं खनिजों का ऐसा मिश्रण प्राप्त होता है जिसका रंग न तो काला होता है न लाल। प्रायः यह मटमैला होता है और इसे ही मटिहा या मिट्टी का सहज रंग कहते हैं।

मिट्टी के रंग का प्रभाव मिट्टी द्वारा शोषित सूर्य की उष्मा की मात्रा पर पड़ता है। कहते हैं कि काली हांडी जल्दी गरम होती है। उसी तरह काली मिट्टी सूर्य की उष्मा को जल्दी ग्रहण करके गरम हो उठती है किंतु सूर्य अस्त होने पर उतनी ही तेजी से ठंडी भी हो जाती है।

जिस तरह सफेद या रेशमी वस्त्र पहनने से गर्मी के दिनों में गर्मी नहीं लगती, (जिसका कारण श्वेत सतह के द्वारा प्रकाश विकिरणों का परावर्तन होता है) उसी प्रकार यदि चुनही या खड़िया से युक्त श्वेत मिट्टी हो तो वह अधिक गरम नही होती।

किन्तु मिट्टी का रंग मुख्यतः मिट्टियों की पहचान में सर्वाधिक सहायक होता है। रंग के अनुसार मिट्टियाँ काली, लाल, धूसर कहलाती हैं। यह रंग प्रायः ऊपरी परत का नहीं अपितु पूरी परिच्छेदिका का होता है। केवल कुछ ही मिट्टियों मे निचले स्तर रंगीन होते है।

यदि हम मिट्टी के रंगो को लेकर उसे युवती का रूप देना चाहें तो कह सकते है कि काले रंग की मिट्टियाँ उसके केश हैं, या काजल की रेखायें हैं, लाल रंग नाखूनों में लगी लाली या उसके होठों की लाली है, श्वेत रंग उसके मुंह मे लगा पाउडर है। चाहें तो कल्पना कर लें कि ये विभिन्न रंग वाली रंग-बिरंगी साड़ियाँ या चुनरियाँ हैं जिसे तरुणी मिट्टी ने पहन-ओढ़ रखा हैं।

मृदा जल

जल बीजों के अंकुरण, पौधों के विकास, सूक्ष्मजीवों की वृद्धि आदि के लिए आवश्यक है। वैसे मनुष्य के लिए जल प्यास बुझाने में सहायक है। मिट्टी मे भी जल प्यास ही बुझाता है। यह प्यास मिट्टी के कणों के बीच में पाए जाने वाले रंध्रों को पूरी तरह जल से भर जाने पर बुझती है। मिट्टी में यह जल प्राकृतिक वर्षा से या कृत्रिम सिंचाई साधनो से प्राप्त हो सकता है लेकिन वायुमंडल में प्राप्त नमी से भी मिट्टियाँ कुछ जल ग्रहण करती हैं। जाड़े के दिनों में ओस के रूप में भी जल प्राप्त होता है। जो जल मिट्टी का अंग बन चुका है वह 'मृदाजल' कहलाता है। किंतु यह कहने के लिए तो जल है, लेकिन मिट्टी के संपर्क में रहने के कारण न तो इसका क्वथनांक वही रहता है, न जमनांक। मिट्टी का जल अजीब बंधन मे रहता है। फिर भी उसकी विलायकक्षमता जैसी की तैसी बनी रहती है। उसमें अनेक प्रकार के लवण, पौधों के पोषक तत्व, घुले रहते हैं। वस्तुतः पौधों के लिए खनिज-लवणों की पूर्ति का एकमात्र साधन और एकमात्र माध्यम; यही मृदाजल है। इसीलिए मिट्टी तथा जल के संबंध पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। शायद मिट्टी का यह एकमात्र ऐसा भौतिक गुण है जिसकी बराबरी नहीं हो सकती। इसके द्वारा अन्य अनेक भौतिक गुण नियंत्रित होते हैं।

वास्तव में मिट्टी की सतह पर जितना वर्षाजल प्राप्त होता है यदि वह पूरा का पूरा मिट्टी में रह जाए और उसमें से किसी प्रकार की हानि न हो तो शायद मृदाजल की कुछ कम मात्रा से ही फसलों का काम चल जाए। मिट्टी से जल की हानि तीन तरह से होती रहती है: (1) वाष्पीकरण या भाप बन कर जल का उड़ते रहना, (2) सतही जल प्रवाह वर्षा के समय ही अधिक जल का बहकर निकल जाना, (3) अंतःस्यंदन द्वारा होने वाली हानि—ऊपर से भले ही यह हानि प्रतीत होती है लेकिन मिट्टी के ही भीतर रहने के कारण यह जल बाद में उपलब्ध हो जाता है। मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण द्वारा होने वाले जल की हानि बचाने के लिए मिट्टी में वनस्पतियों या फसलों का होना आवश्यक है। इससे 18-40 प्रतिशत तक हानि रुक जाती है। वर्षा के जलप्रवाह से होने वाली हानि खेतों के ढाल, खेतों के आच्छादन (फसल या पलवार), वर्षा की तीव्रता तथा अंतःस्यंदन की गति पर निर्भर करती है। ढाल बढ़ने से हानि बढ़ जाती है। जंगलों के कारण वर्षा जल की हानि घटती है। इस प्रकार से कुल वर्षाजल में से 5 प्रतिशत से लेकर 60 प्रतिशत तक हानि संभव है।

अंतःस्यंदन की मात्रा रंध्राकाशों पर निर्भर करती है। मिट्टी मे जितने ही बड़े-बड़े रंध्र होंगे उतनी ही तीव्रता से वर्षा जल मृदा-परिच्छेदिका में प्रविष्ट होगा। यह रंध्राकाश मृदा विन्यास पर निर्भर करता है। ज्योंही मिट्टी जल से सिक्त हो जाती है कि बड़ेबड़े कण समूह टूटने लगते हैं और रंध्राकाशों या छिद्रों को बंद कर लेते है। कभी कभी केंचुओं, चूहों आदि के द्वारा बनाए गए छिद्र वर्षाजल के अंतःस्यंदन मे सहायक होते हैं। किंतु कोई यह न सोचे कि सूखी मिट्टी सर्वाधिक प्यासी होती होगी। यह पाया गया है कि सूखी मिट्टी द्वारा जल का अवशोषण उतनी तीव्रता से नहीं होता जितनी तीव्रता से जल से सिक्त मिट्टी द्वारा। सूखी मिट्टी की पपड़ी जल अवशोषण में बाधक होती है किन्तु यदि थोड़ी वर्षा हो तो वह उसका शोषण भी कर सकती है। मिट्टी के ऊपर पत्तियों, डंठलों, जैव-खादों की पतली परत बिछाकर मिट्टी से होनेवाले जल की वाष्पीकरणक्षति को रोका जा सकता है। इससे मिट्टी में जल के प्रवेश होने में सुगमता होती है।

ऐसा देखा गया है कि इससे अल्प वर्षा का शत प्रतिशत जल मिट्टी में प्रविष्ट हो जाता है जो पौधों के काम आ सकता है। किंतु यदि मिट्टी की ऊपरी सतह पर अच्छी तरह पाटा

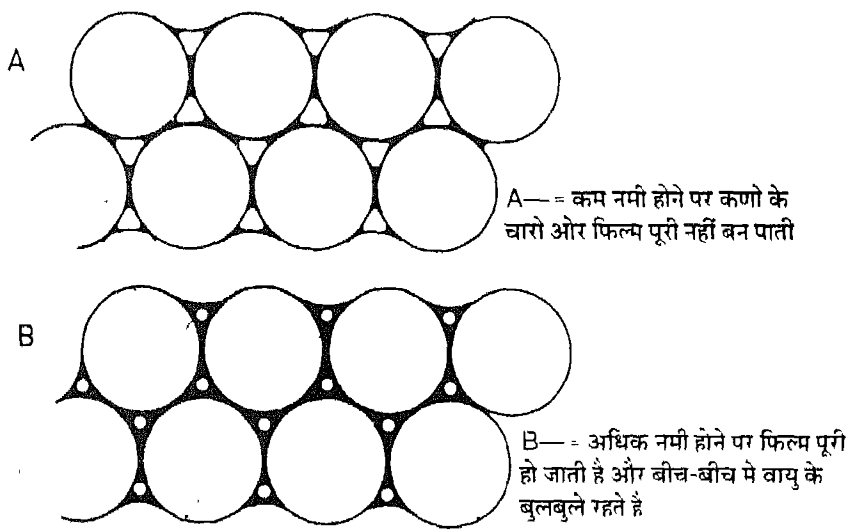
चला कर उसे कठोर (संहत) बना दिया जाए तो यह वर्षाजल वाष्पीकृत हो जाता है और मिट्टी के भीतर नहीं जा पाता। भारी वर्षा होने पर जलप्रवेश न होने से वर्षाजल बह कर बाहर चला आता है। विदेशों में जैव-पलवारों (Organic mulch) पर अत्यधिक बल दिया जाता है यद्यपि इनसे कुछ हानियाँ भी हो सकती हैं, यथा इसमें हानिकारक कीड़े शरण पा सकते हैं, आग लग सकती है, पौधों की जड़ें उथली रहने से उन्हें नीचे की सतह से पोषक तत्व नहीं मिल पाते, आदि।

अब बीजों के अंकुरण तथा पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक जल की मात्रा पर एक नजर डाल लेना सामयिक प्रतीत होता है। यह ज्ञात है कि बीजों को उगने के लिए अत्यल्प नमी (जल) चाहिए। उदाहरणार्थ जौ के लिए बीज के भार का 49-68 प्रतिशत, मटर के लिए 65-108 प्रतिशत, राई के लिए 60-85 प्रतिशत जल चाहिए। इस प्रकार मटर के बीजों के अंकुरण के लिए प्रति एकड़ उतना ही जल चाहिए जितनी बीज मात्रा एक एकड़ में बोनी हो। जिस क्षण से पौधा अंकुर रूप में मिट्टी के बाहर निकल आता है, उसके बाद अपने जीवन-काल के अंतिम क्षण तक वह मिट्टी में से जल ग्रहण करता रहता है। इस जल की प्रचुर मात्रा पौधों की पत्तियों के रंध्रों में से वाष्प के रूप में उत्सर्जित होती रहती है। इसे 'वाष्पोत्सर्जन' कहते हैं। एक किलोग्राम शुष्क पदार्थ बनने में जल की जितनी मात्रा वाष्पोत्सर्जित होती है वह 'वाष्पोत्सर्जन गुणांक' कहलाती है। इस तरह जो मात्रा प्राप्त होती है, वह सभी फसलों के लिए भिन्न-भिन्न है। वातावरण के अनुसार इसमें घट-बढ़ होती रहती है। ज्वार-बाजरा के लिए यह गुणांक 310-320 है, गेहूं के लिए 513, चुकंदर के लिए 905, आलू के लिए 636, घासों के लिए 700 से ऊपर पाया गया है। यदि मिट्टी के जल में लवण मिले हों तो इन गुणांकों में कमी आती है जिसका अर्थ यह हुआ कि जब मिट्टी में उर्वरक मिला दिए जाते हैं तो, वाष्पोत्सर्जन गुणांक गिर जाते हैं। यही कारण है कि यदि वर्षा कम होती है तब भी खाद डाले गए खेतों में अच्छी फसल हो जाती है। किंतु बिना खाद डाले खेतों में कुछ भी पैदावार नहीं होती।

इस प्रकार वाष्पोत्सर्जन गुणांक से किसी भी फसल के लिए आवश्यक मिट्टी-जल की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। उदाहरणार्थ, यदि प्रति एकड़ गेहूं की कुल उपज (दाना भूसा मिलाकर) 2500 किग्रा. हो तो इतनी उपज के लिए 513×2500 किग्रा. जल की आवश्यकता

होगी। इतना जल उस ऋतु में 12 इंच वर्षा के तुल्य होगा। स्पष्ट है कि गेहूं की संतोषजनक फसल वहीं हो सकती है जहां 12 इंच से अधिक वर्षा होती है। जहां वर्षा कम होती है, वहां जल की पूर्ति विविध सिंचाई साधनो से की जाती है। सिंचाई का उद्देश्य पौधो को उचित समय पर उचित मात्रा में जल की पूर्ति कराना है। सिंचाई के द्वारा कितना जल दिया जाय इसकी गणना मिट्टी में पहले से उपस्थित जल के प्रकार तथा उपलब्ध जल मात्रा को ध्यान में रखकर की जाती है।

भूमि जल के प्रकार : मिट्टी के कणों के आकारप्रकार एवं उनके विन्यासो के कारण मिट्टी मे जो रिक्त स्थान बचते हैं, उनमें वायु तथा जल दोनो विद्यमान होते हैं। रिक्त स्थानो की लम्बाई-चौड़ाई या उनके व्यास के अनुसार मिट्टी के भीतर जल का संचार या प्रवाह होता है। वस्तुतः मिट्टी में जो रिक्त स्थान होते हैं, वे टेढ़ेमेढ़े तथा ऊपर से नीचे होने के साथ ही साथ

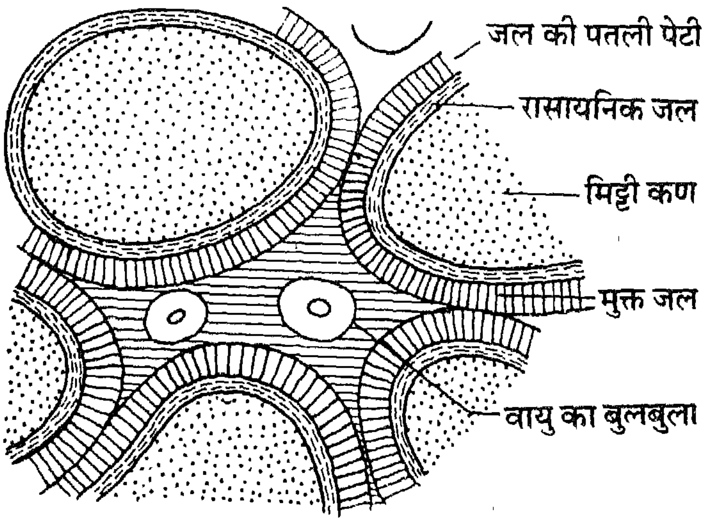


चित्र 16—आदर्श मिट्टी में जल का वितरण

दाएंबाएं भी रहते हैं। इसे इस तरह से कहना चाहिए कि मिट्टी के भीतर जो मार्ग हैं, वे टेढ़ेमेढ़े घुमावदार होते हैं, कुछ तंग या संकरे होते हैं तो कुछ चौड़े। जो मार्ग तंग हैं, वे बाल के अग्रभाग जितने पतले होते हैं अतएव केशिकाएं (Capillaries) कहलाते हैं। इनके भीतर जल का प्रवाह अत्यंत मंद गति से होता है और यदि कभी वायु उपस्थित रह गई तो जल का संचालन और भी मंद पड़ जाता है। आपने अनुभव किया होगा कि यदि सिरिंज में वायु का एक भी बुलबुला आ जाता है तो इंजेक्शन लगाने के पूर्व उसे निकालना आवश्यक हो जाता है जिससे ठीक से दवा प्रविष्ट हो। जो मार्ग इनसे बड़े आकार के होते हैं वे 'अकेशिकाएं' (Non Capillaries) कहलाते हैं और ये वे मार्ग हैं जिनमें से होकर वर्षा जल या सिंचाई जल सरलता से नीचे की ओर गति कर सकता है।

मिट्टी के भीतर जो जल रहता है, वह इस तरह नहीं है कि जल में मिट्टी के कण उस तरह तैरते हों, जैसे कि नदी के जल में नावें तैरती हैं। वस्तुतः मिट्टी के भीतर मिट्टी के कण विशेष विन्यास मे स्थिर रहते हैं और जल गति करता है। यह जल भी फिल्मों के रूप में रहता है। ये फिल्में जल की मात्रा बढ़ने पर मोटी होती जाती हैं। मिट्टी के भीतर का सारा जल कभी भी पौधों के लिए पूरी तरह उपलब्ध नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि कुछ जल मिट्टी के कणों के द्वारा इतनी दृढ़ता से बॅधा रहता है (पतली फिल्मो के रूप में) कि वह एक तरह से अप्राप्य ही होता है। इसे 'रुद्धजल' कहते हैं। जो जल केशिकाओं मे रहता हैं वह पौधो के लिए उपलब्ध होता है। इसे कोशिका-जल कहते हैं। जब मिट्टी में जल अधिक रहता है तो सारी केशिकाएं जल से भर जाती हैं और जल मुक्त अवस्था में पाया जाता है। इसे 'मुक्तजल' कहते हैं। यह जल जब गुरुत्वाकर्षण के कारण मिट्टी की निचली सतहों की ओर यात्रा कर सकता है। ऐसे जल को 'गुरुत्वीयजल' कहते हैं। मिट्टी के कण कुछ जल को रासायनिक रीति से बांधे रहते हैं और यह इतनी दृढ़ता से बँधा रहता है कि जल मिट्टी को 100 से. पर 4-6 घन्टे तक गरम करते हैं, तभी वह विलग होता है। ऐसे जल को 'रासायनिक जल' कहते हैं।

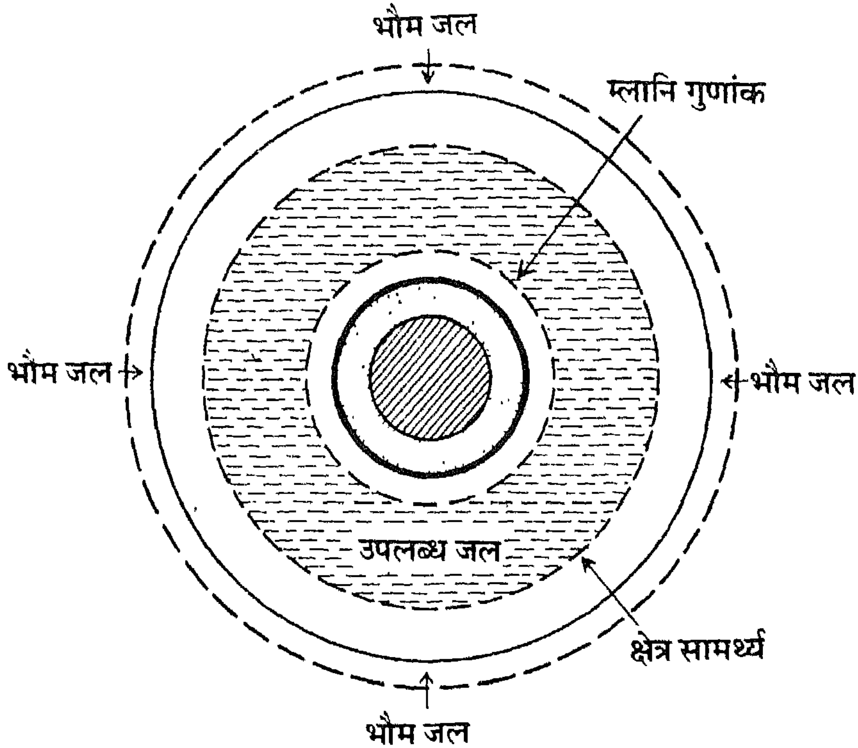
ये मृदा जल के विभिन्न प्रकार वैसे तो जल ही हैं लेकिन पौधों के लिए उनकी उपलब्धि एक सी नहीं होती। जितना जल मिट्टी में से पौधे ग्रहण कर सकते हैं वह 'उपलब्धजल' कहलाता है। यह जल मृदाजल की वह मात्रा है जिसे मिट्टी सहर्ष पौधों को दे सकती है।



चित्र 17 — मिट्टी जल के प्रकार

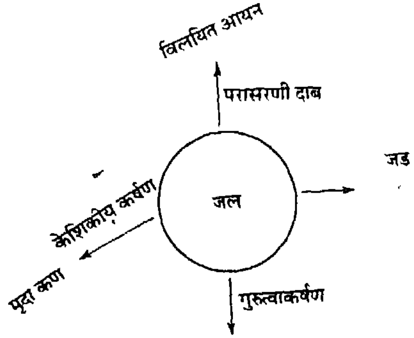
किंतु मिट्टी कभी भी पूरा जल नहीं दे पाती। यह देखा गया है कि जभी मिट्टी मे कुछ जल रहता है तभी पौधे मुरझाने लगते हैं। जल की जिस अवस्था पर पौधों का मुरझाना प्रारम्भ होता है, वह म्लानि बिन्दु' कहलाता है। म्लानिबिंदु से आगे जितना भी जल मिट्टी में रहता है वह पौधों के लिए अनुपलब्ध रहता है। म्लानबिंदु इसका द्योतक है कि पौधे को सिंचाई द्वारा जल दिया जाए।

मिट्टी जब जल से पूरी तरह सिक्त रहती है (संतृप्त अवस्था) तो सारी केशिकाएं जल से भरी रहती हैं। मृदावैज्ञानिकों ने देखा है कि वर्षा के 24 घंटे बाद मिट्टी में जितनी जल की मात्रा रहती है वह 'क्षेत्रसामर्थ्य' कहलाती है। वस्तुतः यह वह अवस्था है जिसमें पौधे बिना किसी प्रयास के जल ग्रहण करते रहते हैं। फिर ज्यों-ज्यों जल घटता है, केशिकाएं रिक्त होती जाती हैं वह पौधे के लिए उपलब्ध होने के कारण 'उपलब्धजल' की मात्रा कहलाती है। जल की यह मात्रा एक प्रकार से जल तथा मिट्टी के कणों के बीच की धारकशक्ति की सूचक है।



चित्र 18 — मृदा जल के विभिन्न रूप

क्षेत्रसामर्थ्य पर इतना जल होता है कि मिट्टी के कण जल के निर्गमन पर बाधा नहीं डालते किंतु ज्योंज्यों जल की मात्रा घटती जाती है, जल एवं मिट्टी के कणों के मध्य का आकर्षण मुखर होने लगता है। इसी आकर्षण का प्रतिफल है कि मिट्टी में अभी जल रहता है किंतु वह पौधों के लिए उपलब्ध नहीं हो पाता। यदि पौधे इस आकर्षण से अधिक बल लगा सकें तभी वे जल ग्रहण कर सकते हैं। किंतु ऐसे पौधे केवल रेगिस्तानों में होते हैं। जल की यह छीना झपटी द्रोपदी के चीरहरण जैसा विरोधी शक्तियों का प्रदर्शन है।



चित्र 19—जल के लिए छीनाझपटी- जल पर कार्यशील बल

मिट्टी में जल की उपस्थिति से मिट्टी के मृइित्तकाकण फूल उठते हैं जिससे मिट्टी के आयतन में थोड़ा प्रसार होता है। यदि मिट्टी में मृत्तिका के साथ ही जैव अंश हो तो यह मिट्टी का फूलना(उत्फुल्लन) और अधिक होता है। जब फूली हुई मिट्टी सूखती है तो उसका संकुचन होता है, जिससे मिट्टी में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। हमारे देश में मध्य प्रदेश की काली मिट्टियों में पड़ने वाली बड़ी-बड़ी दरारों का कारण यही है। इस फूलने सिकुड़ने के फलस्वरूप मिट्टी में विन्यास का जन्म होता है।

यदि मिट्टियों को गीला रहते हुए जोत दिया जाता है तो सूखने पर मिट्टी में बड़ेबड़े ढेले बन जाते हैं। इसीलिए किसान इन ढेलों से बचने के लिए मिट्टी को तभी जोतता है जब उसमें निश्चित मात्रा में (कम) नमी हो। मिट्टी के भौतिक गुणों में जुताई का बहुत बड़ा हाथ है। मिट्टी विन्यास के सुधारने एवं उसे बनाए रखने के लिए जो कृषि कार्य किए जाते हैं वे जुताई (Tillage) के नाम से अभिहित हैं। जुताई से न केवल विन्यास सुधरता है, अपितु मिट्टी की 'जल ग्राह्यता' बढ़ जाती है जिससे पौधे लाभान्वित होते हैं। शुष्क खेती या 'बारानी खेती' का मूल सिद्धांत खेतों में अधिकाधिक जल संग्रह करके उसको सुरक्षित रखते हुए फसलें उगाना है।

इस तरह मृदाजल मिट्टी की तरलता या उसके लावण्य के लिए उत्तरदायी है। तभी सारी वनस्पति उसकी ओर आकृष्ट होती है।

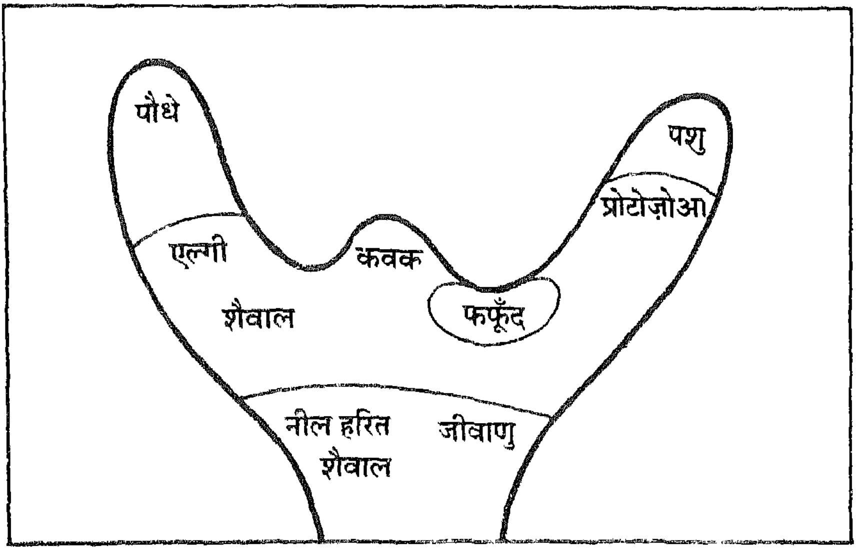
7

मिट्टी: जीवाणुओं की अजीब दुनिया

मृदा एक व्यस्त जटिल प्रयोगशाला की भाँति है, जहां निरंतर अनंत सूक्ष्मजीवों का समूह कार्यरत रहता है। इनकी सक्रियता से भूमि मे अनेकानेक क्रियाये सम्पन्न होती है। किंतु आंखों से नहीं दिखते-अदृश्य प्राणी के रूप में रहने के कारण ये अल्प परिचित भी हैं। मृदासूक्ष्मजैविकी वह विज्ञान है, जो मिट्टी में पाए जाने वाले ऐसे असंख्य जीवों का अध्ययन करता है। एक चम्मच उर्वर एवं नम मिट्टी में उतने ही सूक्ष्मजीव होते हैं जितने कि विश्वभर में मानव प्राणी है। 4 अरब से भी अधिक सूक्ष्मजीव। यदि प्रति हेक्टर क्षेत्रफल में ऐसे सूक्ष्मजीवों की संख्या का अनुमान लगाना हो तो इसे इस प्रकार समझना होगा कि 30 सेमी. गहराई तक, एक हेक्टर मिट्टी में इनका भार 2-10 टन होगा। सूक्ष्मजीव जगत का यह भार नगण्य नहीं कहा जा सकता।

वैसे जब कोई सूक्ष्मजीवो का नाम लेता है तो रोग के कीटाणु आंखों के सामने नाच जाते हैं किंतु मिट्टी में हजारों प्रकार के सूक्ष्मजीवों में से 4-5 दर्जन ही रोगजनक तथा परजीवी हैं, शेष सारे सूक्ष्मजीव किसानों के मित्र हैं। लेकिन क्या किसान इनसे परिचित हैं ?

ये सूक्ष्मजीव पौधों तथा पशुओं के बीच की अवस्था के परिचायक हैं। इनमें से अधिकांश पौधों के तुल्य हैं, अतएव वे निम्नतर पादपजीव कहलाते हैं। जो जीव पशुओं के समान हैं वे सूक्ष्म नहीं रह जाते, वैसे मिट्टी के जीव जगत में उनकी गणना हम भले कर लें। इसीलिए मिट्टी के जीवों को 'सूक्ष्मवनस्पति जात' (Microflora) तथा 'सूक्ष्मप्राणीजात' (Microfauna) इन दो वर्गों में रखने की प्रथा है। मिट्टी के सारे सूक्ष्मजीवों का कार्य सफाई मजदूरों या सफाई सेना के रूप में होता है। मिट्टी में वनस्पति अवशेष, गोबर और पशुओं

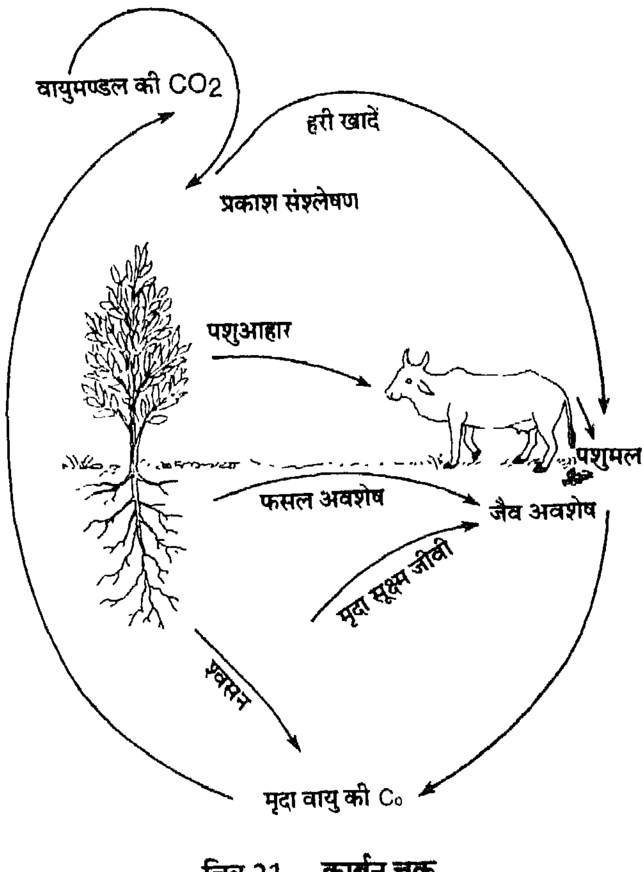


चित्र 20— सूक्ष्मजीव जगत—एक विहंगावलोकन

की लाशें देखते आँखों से ओझल हो जाती हैं क्योंकि सूक्ष्मजीव इन्हें चट कर जाते है। यदि ये सूक्ष्मजीव न होते तो मिट्टी की सतह पर कूड़ाकरकट, खाद, लाश आदि का अम्बार लग जाता। तब पेड़ पौधों का जीवन दूभर हो जाता। क्योंकि उपर्युक्त कूड़ाकरकट, खाद, लाश के विघटन से ही वह कार्बन डाइ आक्साइड मिलती है, जिसका उपयोग पेड़पौधे अपना भोजना बनाने में करते हैं। इसलिए हमने मिट्टी को प्रयोगशाला कहा है, जिसमें ये सूक्ष्मजीव अहर्निश कार्य करते हैं। नीरव, अदृश्य संसार के सूक्ष्मजीव यदि विश्राम करने की सोच लें तो गजब हो जाए और इसका परिणाम होगा प्रदूषित पर्यावरण। इस प्रकार सूक्ष्म जीवों का प्रमुख कार्य जैव पदार्थो का विघटन है। प्रकृति बड़ी दयालु है कि उसने हमारे ग्रह में जीवन-चक्र की पूर्ति के लिए मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को उत्पन्न किया और मिट्टी सचमुच इतनी ममतामयी माता है कि वह इनका पालनपोषण भी करती है।

अनुमान है कि वायुमण्डल में 21990 लाख किग्रा. कार्बन डाइआक्साइड गैस है।

हमारे पृथ्वी मंडल पर जितनी वनस्पति है, उसके लिए प्रतिवर्ष 900,000 लाख किग्रा. कार्बन डाइ आक्साइड की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता बहुत अधिक है, जिसकी पूर्ति इन्हीं सूक्ष्मजीवों से संभव है। ऐसा अनुमान है कि समशीतोष्ण मिट्टियों में जब फसलें उगी रहती हैं, तब प्रति हेक्टर मिट्टी की जुती हुई परत से लगभग 15 टन कार्बन डाइ आक्साइड निकलती है। इस मात्रा से फसलें 50 टन हरा पदार्थ उत्पन्न कर सकती हैं।

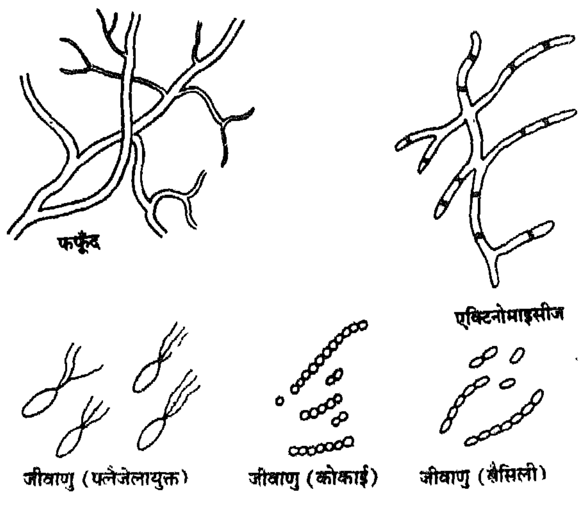


चित्र 21—कार्बन चक्र

मिट्टी में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों में निम्नलिखित 5 वर्गों के सूक्ष्मजीव प्रसिद्ध हैं।

1. बैक्टरीरिया या जीवाणु
2. कवक या फंजाई
3. ऐक्टिनोमाइसीज
4. शैवाल या ऐल्गी
5. प्रोटोजोआ

इसके अतिरिक्त निमैटोड, केंचुए, दीमक, चींटि, मटे, मक्खियाँ भी पाई जाती हैं। ये भी मिट्टी के पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। ये सभी जैव अंश को ग्रहण करके उसे आमूल परिवर्तित कर देते हैं। प्रायः उसे महीन मलकणों के रूप में निकाल देते हैं और मिट्टी में तरह-तरह के रास्ते बनाकर उनकी संरचना को सुधारते हैं। यही नहीं, ये सूक्ष्मजीवों को अपने ऊपर प्रश्रय देकर मिट्टी में इधर उधर ले जाते हैं।



चित्र 22 —मृदा सूक्ष्मजीव

जीवाणु

मिट्टी में तीन आकार के जीवाणु मिलते हैं: दण्ड, कोकस (अण्डाभ) तथा सर्पिल। इनमे से दण्ड (सीधे) तथा कोकस (गोलाकार) रूपों की बहुलता होती है। सारे जीवाणुओं को भोजन की आवश्यकताओं के अनुसार दो-दो भागों में बांट सकते हैं:

(1) वे जो जैव पदार्थ में संचित ऊर्जा का उपयोग अपने जीवन निर्वाह के लिए करते हैं और 'विषमपोषित' (Heterotrophic) कहलाते हैं। ये जीवाणु विशिष्ट एंज़ाइमों की सहायता से जैव पदार्थ का विघटन करके ऊर्जा प्राप्त क़रते हैं और इस तरह अपने कोशों का निर्माण करते हैं, फिर वृद्धि करते हैं। इनमें से कुछ मृत जैव पदार्थ पर जीवित रहते हैं, तो कुछ जीवित पौधों और पशुओं पर वृद्धि करते हैं। पहले वाले 'मृतजीवी' (Saprophyte) कहलाते हैं और दूसरे 'परजीवी' (Parasite) (2) कुछ जीवाणु जैव पदार्थ पर निर्भर न रहकर अकार्बनिक स्रोत से ऊर्जा प्राप्त करते हैं। ये बड़े कट्टर जीवाणु होते हैं। जब तक इन्हें ये अकार्बनिक पदार्थ नहीं मिलते, ये निश्चेष्ट रहते हैं, पर जैव पदार्थ ग्रहण नहीं करते, अनशन किए रहते हैं। इनकी क्रिया से भूमि उर्वरता को बड़ा बल मिलता है। नाइट्रेट, सल्फेट आदि की उपलब्धि इन्हीं की सक्रियता का परिणाम होती है।

मिट्टी में जीवाणुओं की संख्या मिट्टी की नमी, ताप, मिट्टी की प्रकृति (अम्लताक्षारता) पर निर्भर करती है। प्रायः मिट्टी की ऊपरी सतह पर इनकी संख्या अधिक होती है और गहराइ पर जाने पर यह संख्या घटती जाती है। इस प्रकार A संस्तर में सर्वाधिक जीवाणु रहते हैं, B संस्तर में भी काफी अधिक जीवाणु मिलते हैं, किंतु C संस्तर में प्रायः नगण्य होते हैं। यह संख्या मौसम के अनुसार बदलती रहती है। ये जीवाणु मुख्यतया मिट्टी के कणों के चारों ओर नमी की फिल्म में रहते हैं, और वनस्पति तथा पशु अवशेषों पर जीवन निर्वाह करते हैं। जब जब मिट्टी में गोबर की खाद या हरी खाद डाली जाती है तब तब एकाएक इनकी संख्या बढ़ जाती है। अनुमान है कि मिट्टी के संपूर्ण सूक्ष्मजीवों में से आधे से अधिक जीवाणु होते हैं। एक ग्राम मिट्टी में जीवाणुओं की संख्या 10^8 (10 करोड़) होती है, जिनका भार एक एकड़ मिट्टी में लगभग 125 किग्रा. (ताजा भार, 25-40 किग्रा. सूखा भार) होगा। यह तो न्यूनतम योगदान है। इनके सूक्ष्म शरीरों में, जो एक ही कोश का बना होता है, पौधों में पाए

जाने वाले सारे आवश्यक खनिज तथा कार्बनिक यौगिक विद्यमान रहते हैं, वे ही कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, एमीनो अम्ल आदि। इतना सब होते हुए भी इनके बड़े नखरे होते है। मिट्टी थोड़ी सी भी अधिक अम्लीय या क्षारीय हुई नहीं कि इनकी संख्या घट जाती है।

कुछ जीवाणुओं की उपादेयता उनके द्वारा यौगिकीकृत नाइट्रोजन के कारण है। प्राय. ऐसे जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों की ग्रंथियों में रहकर नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके अदलहनी फसलों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं। किंतु कुछ जीवाणु गेहूं जैसी धान्य फसल के लिए नाइट्रोजन सुलभ कराते हैं। इनमे एजोटोबैक्टर नामक जीवाणु सर्वप्रमुख है। आजकल नाइट्रोजन, पोटाश तथा फॉस्फोरस तीनों तत्वों को उपलब्ध कराने वाले जीवाणु ज्ञात हैं। अतएव इनका उपयोग जीवाणु उर्वरकों के रूप में किया जाने लगा है। अब वह भी दिन दूर नहीं जब धान्य फसलों की जड़ों में भी ग्रंथिनिर्माण करके नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु उत्पन्न किये जा सकेंगे।

कवकः इन्हें फफूंद भी कहा जाता है। इनकी कोशिका में जाल जैसे तंतु निकलते है जिन्हें 'हाइफी' (Hyphae) कहते हैं। सारे हाइफी मिलकर माइसीलियम कहलाते है। कुकुरमुत्ते इन्हीं कवकों के विकसित उच्च रूप हैं। कवकों की सबसे बड़ी विशेषता है उनका अम्ल प्रेम। ये जंगलों में वृक्षों के नीचे की मिट्टी में बढ़ते है, विशेषतया शंकुधारी वृक्षों के नीचे क्योंकि इनकी पत्तियों के सड़ने से अम्ल उत्पन्न होता है। कवकों को सुखाने पर उनमें 40-45 प्रतिशत कार्बन, 2-8 प्रतिशत नाइट्रोजन, तथा 6-8 प्रतिशत (कभी कभी 15 प्रतिशत तक) राख रहती है। राख में मुख्यतया पोटेशियम तथा फॉस्फोरस तत्व पाए जाते हैं। कवको का मुख्य योगदान मृदासंरचना में होता है क्योंकि ये गोंद जैसा पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिनसे मिट्टी के कण परस्पर बंध जाते हैं। इनकी संख्या एक ग्राम मिट्टी में एक हजार से 10 लाख तक होती है। कवकों की अनेक जातियाँ रोग फैलाने वाली भी होती हैं। कवकों की 'पेनिसिलियम' जाति से पेनिसिलीन नामक औषधि प्राप्त की जाती है।

ऐक्टिनोमाइसीजः ये जीवाणुओं तथा कवकों के मध्यवर्ती सूक्ष्मजीव हैं। कवकों की भांति इनमे भी तंतु पाये जाते हैं, और जब ये तंतु टूटफूट जाते हैं तो उनसे जीवाणु जैसी संरचनाएँ

प्रकट होती हैं। सभी लोग पहली वर्षा के साथ मिट्टी में एक सोंधी गंध निकलने से परिचित हैं। यह गंध एक्टिनोमाइसीज की विशिष्ट गंध है। इन्हें भी जीवाणुओं की ही तरह अम्लता पसंद नहीं है। इनकी संख्या काफी कम होती है। इनके कोशों का संघटन कवकों जैसा होता है। इनमें से 'स्ट्रेप्टोमाइसीज' जाति से स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा आरियोमाइसिन जैसे एंटीबायोटिक प्राप्त किए जाते हैं।

शैवालः इनकी विशेषता है कोशिका में क्लोरोफिल की उपस्थिति, जबकि मिट्टी के किसी अन्य सूक्ष्मजीव मे क्लोरोफिल नहीं पाया जाता। क्लोरोफिल पाए जाने के कारण शैवाल पौधों के अधिक निकट हैं। अतएव ये सूर्य के प्रकाश में अपना भोजन स्वयं निर्मित कर सकते हैं। इनकी एक विशेष जाति नील हरित शैवाल में दलहनी जीवाणुओं (राइजोबियम) की भाँति नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने की अभूतपूर्व क्षमता देखी जाती है। धान की मिट्टियों में शैवालों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है।

लाइकेन (Lichen) या काई कवकों तथा शैवालो का संयुक्त प्ररूप है। ये चट्टानों को तोड़ने मे विशेष सहयोग देती हैं।

प्रोटोज़ोआ : जीवाणुओं की तुलना मे प्रोटोज़ोआ का आकार भीमकाय होता है, फिर भी रहता है सूक्ष्मदर्शी ही। वास्तव में यह अन्य सूक्ष्मजीवों से इस मामले में भिन्न है कि ऊपर लिखे चारों वर्ग के सूक्ष्मजीव पौधों के सूक्ष्म प्रारूप हैं किंतु प्रोटोज़ोआ पशुओं का सूक्ष्म प्रारूप है। यह उपयोगी जीवाणुओं का भक्षण करता है, अतएव यह एक प्रकार से जैव पदार्थ के विघटन को रोकता है और उर्वरता को घटाता है। मिट्टी में प्रोटोज़ोआ की संख्या अत्यल्प होती है।

निमैटोडः ये मिट्टी के बड़ेबड़े रंध्रों में, जहां नमी होती है, आसन जमाए रहते हैं। इनकी लम्बाई 0.5 से 2 मिमी. तक होती है, और प्रायः फसलो की जड़ों में अड्डा जमाते हैं। ये जैव अंश खाते है, कभीकभी मिट्टी के जीवाणुओं तथा कवकों का भी सफाया कर देते है।

ये हानिकारक हैं। ये अनेक पौधों की जड़ों में परजीवी की तरह रहते है और कभीकभी फलदार वृक्षों की जड़ों को हानि पहुँचाते हैं।

इस प्रकार मिट्टी के सूक्ष्मजीव मिट्टी के रंध्रों में, मिट्टी के कणों में अपना आसन जमाकर, बहुत ही कम हिलडुल कर एकान्त भाव से माता पृथ्वी की सेवा करते हैं। ये बड़े उपकारी होते हैं, मिट्टी के विकास में भी हाथ बटाते हैं। ये मिट्टी में ही जन्मते हैं, उसी में बढ़ते हैं और उसी में उनकी समाधि बन जाती है। इनके लिए कौन रोता-गाता है?

सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार तथा लुई पास्तुर के शोध कार्यों के बाद मिट्टी के इस अदृश्य जगत का पता चला। तब से इतना शोध कार्य हुआ है कि मिट्टी के सूक्ष्मजीवों का अब औद्योगिक महत्व हो गया है। वैक्समैन नाम के एक विज्ञानी, मूलतः सूक्ष्मजैविकी की उन्नति के लिए प्रसिद्ध हैं, उन्होंने ऐंटीबायोटिकों की खोजकर सूक्ष्मजीवों के अध्ययन को चरमोत्कर्ष प्रदान किया है। मिट्टी में जीवाणुओं को मारने की जो विलक्षण शक्ति है, वह कतिपय सूक्ष्मजीवों द्वारा इन्हीं 'ऐंटीबायोटिकों' की उत्पत्ति है। आखिर न्यूमोनिया, हैजा, तपेदिक के सूक्ष्मजीव कहां जाते हैं? वे सब मिट्टी में दफना दिए जाते हैं, वहीं उनकी समाधि बन जाती है।

मिट्टी का यह सूक्ष्मजीव विश्व-पर्यावरण के प्रदूषित होने से उत्पन्न संकट से मुक्ति दिलानेवाला है। तथाकथित अनेक जीवनाशियों को ये सूक्ष्मजीव विषविहीन बनाकर मिट्टी को स्वच्छ रखते हैं।

□□

8

मृदा उर्वरता

एक बार एक रसायनशास्त्री से नैपोलियन बोनापार्ट का मूल्यांकन करने के लिए कहा गया तो उसने उसके शरीर में उपस्थित सारे तत्वों की मात्रा की गणना करके उनका मूल्य लगाया और बताया कि वह कुछेक शिलिंग होगा। इतिहास के सुप्रसिद्ध व्यक्ति का इतना कम मूल्य!

इसी प्रकार यदि हम मिट्टी का मोल निकालने चलें तो शायद मिट्टी का मोल अधिक न निकले जबकि हम इसे 'अनमोल' कहते चले आ रहे हैं। इसका कारण यह है, मिट्टी का निर्माण, इसके विभिन्न अवयवों का गठन इस प्रकार का है और इसमें कुछ तत्वों का निरंतर संचरण या चक्रण इस प्रकार होता रहता है, जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्त का संचार होता रहता है। इन सारे प्राणतत्वों से शायद मिट्टी के शरीर को उतना लाभ नहीं होता जितना कि उसमें उगने वाले पेड़-पौधों को। वस्तुतः मिट्टी का जन्म ही पेड़पौधों तथा सूक्ष्मजीवों को जीवन प्रदान करने या उन्हें शरण देने के लिए हुआ है।

इस प्रकार मिट्टी परोपकारिणी है। उसके शरीर का मूल्यांकन कर पाना हमारे लिए कठिन है। वह ऐसी माता है जो रसोई में सभी व्यंजन तैयार करती रहती है और अपने बच्चों को आवश्यकतानुसार थोड़ाथोड़ा करके परोसती रहती है। उसे तो निरंतर पूर्ति करनी होती है अतएव यदि वह अपव्यय करे या अपने व्यंजनों को व्यर्थ हो जाने दे तो फिर वह उन्हें कहां से लाए! मिट्टी में जन्म के समय नपीतुली मात्रा में तत्वों का जो संयोजन हुआ था उसी से उसे काम चलाना है। यदि वह उसमें से कुछ देती है तो अपने शरीर की कटौती करके ही ऐसा करती है। यदि वह चाहे तो न दे। कई बार ऐसा होता भी है तब वह बंजर या बंध्या बन जाती है। किसान उसे वैसे ही छोड़ देता है जैसे दूध न देने वाली गाय को। तब वह

बेचारी पड़ी रहती है वीरान। उसके भाग्य कब बदलेंगे? शायद एक दो पुश्तों में ! नहीं, नहीं। मिट्टी का पुनर्जन्म कठिन है, उसमें पौधों को भोजन देने की शक्ति का पुनर्जनन काफी समय लेता है। ऐसा नहीं है कि वह बंजर ही पड़ी रहेगी। एक बार वह पुनः कृष्य बनेगी, उस पर फिर हल चलेंगे, फिर फसलें लहराएंगी लेकिन पुश्तों तक तिरस्कृत रहने के बाद।

जरा कल्पना कीजिए उस मिट्टी की, जब वह बन कर तैयार हुई थी, उस तरुणी को, उस कुमारी को, जो अब पौधों, वनस्पतियों का भार वहन करने, गृहणी बनने के लिए उत्सुक है। सचमुच ही विदेशों में ऐसी मिट्टी को जिसमें पहले कभी फसलें नहीं उगी हों, कुमारिका (Virgin Soil) कहते हैं। आयु के बढ़ने के साथ साथ जिस प्रकार तारुण्य के बाद वृद्धवस्था आती है, मिट्टी भी धीरे धीरे वृद्धा होने लगती है। बंजर भूमि ऐसी ही अवस्था की परिचायक है।

मिट्टी का जो सम्मान है, उसकी जो प्रतिष्ठा है, वह उसकी ऊपरी चमकदमक, रूपरंग के कारण नहीं है अपितु उस जीवनदायिनी शक्ति के कारण है जिसे 'उर्वरता' (Fertility) कहते हैं। यह उर्वरता मिट्टी के साथ जुड़ी हुई उसकी विशिष्टता है। यह गुण उसे विरासत में मिला है। इस गुण का मूलयाकन फसलों के उत्पादन द्वारा होता है, यथा कौन कौन सी फस्लें उगती हैं, ये फसलें स्वस्थ या नीरोग तो हैं, ये फसले लगातार उगाई जा सकती हैं कि नहीं आदि?

हम पहले ही कह चुके हैं कि मिट्टी हमारी माता है। वह हमारा पालनपोषण अपनी जीवनदायिनी शक्ति का दान करके करती है। यही जीवनदायिनी शक्ति उर्वरता है।

सस्य विज्ञानियों ने मिट्टी की उर्वरता के संबंध में तरह तरह के विचार व्यक्त किए हैं। लेकिन सबों का सार यह है कि "मृदाउर्वरता मिट्टी की वह 'क्षमता' है, जिससे आर्थिक महत्व की फसलों का उत्पादन हो।" मृदा की यह क्षमता मिट्टटी में निहित उन कारकों पर निर्भर करती है जो फसलोत्पादन क्षमता को निर्धारित करते हैं। ये कारक इस प्रकार हैं:

1. आवश्यक पोषक तत्वों का संतुलित और सुलभ रूप में वर्तमान होना;
2. पोषक तत्वों की निर्मुक्ति के लिए स्वस्थ वातावरण तैयार करने हेतु मिट्टी में उचित सूक्ष्मजैविकस्तर बनाए रखना;
3. मृदा में किसी विषैली या हानिकारक अवस्था का न होना ।

सस्य वैज्ञानिकों ने अनुभव किया है कि किसी राष्ट्र की मृदा उर्वरता ही उस राष्ट्र की बहुमूल्य संपत्ति है। अतएव जिस भूमि की उर्वरता का स्तर उच्च हो, उसका अनुरक्षण किया जाना चाहिए, जहां मृदा उर्वरता कम हो उसे बढ़ाना चाहिए और जहाँ उर्वरता का अभाव हो वहाँ उर्वरता विकसित की जानी चाहिए।

अनुभव के आधार पर उर्वरता के दो स्वरूप हैं: 'स्थायी उर्वरता' तथा 'अस्थाई उर्वरता'। स्थायी उर्वरता जन्मजात होती है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है किंतु अस्थाई उर्वरता वस्तुतः उपर्युक्त प्रबंध द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। ऐसी उर्वरता भले ही अस्थायी हो किंतु लाभप्रद है, भले ही हमें बहुत मंहगी क्यों न पड़े; वैज्ञानिकों तथा किसानों, दोनों ही के लिए। उसकी संभाल सचमुच वृद्धा की देखरेख जैसी है।

इस प्रकार मृदा उर्वरता अध्ययन एवं खोज का पृथक विषय बन चुकी है। इसका संबंध एक ओर जहां मृदाविज्ञान से है, वहीं दूसरी ओर मृदाप्रबंध से भी है। यह विशुद्ध ज्ञान नहीं अपितु व्यावहारिक ज्ञान का विषय है।

उर्वरता का प्रयोग हम चाहे जिस रूप में करें, वह पूर्णतया मिट्टी पर आश्रित है और मिट्टी जलवायु पर आश्रित है। अतएव उर्वरता भी जलवायु पर निर्भर करेगी। उदाहरणार्थ, जो मिट्टी समतल भूमि में प्रचुर उपज देती है, वही ऊंचे पर्वत पर (यथा हिमालय पर्वत में) या रेगिस्तान में (राजस्थान) स्थित होने के कारण संभव है तनिक भी उपज न दे। किंतु साथ ही यह स्मरण रखना होगा कि फसलों को भी जलवायु के अनुकूल होना चाहिए। एक उदाहरण लें। यदि किसी भूभाग में मक्के की उपज नहीं होती तो यह मृदा-उर्वरता का दोष नहीं होगा अपितु फसल का दोष होगा। फसलों को भूमि के भी अनुकूल होना चाहिए। उदाहरणार्थ, बलुही भूमि में बाजरा या आलू उत्पन्न हो सकता है लेकिन गेहूं नहीं। अतएव अनेक कारकों के एकजुट होने पर ही मृदा उर्वरता का वास्तविक लाभ उठाया जा सकता है। केवल अल्प-उर्वरता वाली मिट्टियाँ ही कम उपज देंगी अन्यथा उर्वर मिट्टियाँ अच्छी उपज देती रहेंगी। यही कारण है कि कोई कितना ही प्रयास क्यों न करे, पथरीली मिट्टी या बालू में खेती नहीं की जा सकती।

कभीकभी मृदा उर्वरता की तुलना ऐसी जंजीर से की जाती है जिसकी शक्ति उसकी सबसे कमजोर कड़ी के बराबर होती है। अतएव इस जंजीर को सुदृढ बनाने के लिए इस

कमजोर कड़ी को मजबूत करना चाहिए। किंतु यदि ऐसा कर लिया जाता है, तो पता चलता है कि इसकी शक्ति अब किसी अन्य कमजोर कड़ी के बराबर हो गई है। वस्तुतः ये कड़ियाँ ही वे कारक हैं जिन पर मृदा उर्वरता निर्भर करती है। ऐसी कड़ियों की संख्या आधे दर्जन से अधिक है। उनको प्रबलित करने पर ही उपज बढ़ सकती है।

उदाहरणार्थ, यदि मिट्टी में फॉस्फोरस की कमी है तो उपज कम होगी किंतु यदि उस मिट्टी में नाइट्रोजन उर्वरक डाले जाते हैं तब भी उपज बढ़ जाती है, किंतु जब फास्फोरस के उर्वरक डाले जाते हैं तो वास्तविक बढ़ी उपज प्राप्त होती है। अतएव मृदाउर्वरता के जिस कारक का अभाव है उसे हटाने पर ही लाभ की कामना की जा सकती है।

यह देखा गया है कि जो मिट्टियाँ वास्तव में निम्न स्तर की हैं, वे चूना डालने से या जल निकास का प्रबंध करने से उर्वर बनती हैं। किंतु यदि किसी मिट्टी मे इस समय कुछ नहीं उत्पन्न होता तो उसका अर्थ यह नहीं निकालना चाहिए कि यह मिट्टी मूलतः दरिद्र है। कहने का तात्पर्य यह है कि भूमि उर्वरता अत्यंत व्यापक विचार है और भूमि प्रबंध के द्वारा इसको समझने में सहायता मिलती है।

उर्वरता बनाम बंध्यता

कुछ मिट्टियाँ ऐसी हैं जो आशा के अनुरूप न तो फसलें देती हैं, न ही घासें उगाती हैं, चाहे जलवायु अनुकूल क्यों न हो। इस अनुर्वरता या अनुत्पादकता का कारण मिट्टी की असंतोषजनक भौतिक अवस्था है। यह भौतिक अवस्था मिट्टी में नमी तथा वायु के पारस्परिक संबंध को बताती है। अतएव इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि या तो ऐसी मिट्टी में जल का अभाव होगा या फिर वायु का अभाव होगा। इस तरह यदि हम मैदानी भाग से पठारी भाग में और फिर क्रमशः पर्वत की ऊंचाइयों तक बढ़ते जाएं तो देखेंगे कि धीरेधीरे मिट्टी की उर्वरता कम हो गई है। ऐसा प्रायः जलाभाव के कारण होता है। घाटी या मैदान में भी निम्न उत्पादकता जलाभाव के कारण होती है। सामान्यतया बलुही मिट्टियों में नमी कम रहती है, किन्तु कुछ काल तक उर्वर से उर्वर मिट्टी में भी नमी की कमी पाई जा सकती है।

यहां तक कि जहां वर्षा होती है, वहां भी सूखे का प्रभाव पड़ सकता है। यह मिट्टी के उथले होने का प्रमाण है। इससे पौधों की जड़ें नीचे नही जा पातीं। यदि मिट्टियों में बड़ी बड़ी दरारें पड़ जाएं तो वह और भी जल्दी सूख जाती है।

किंतु हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि अधिक नमी हानिकारक नहीं होगी। जब मिट्टी के रंध्र पूरी तरह जल से भर जाते हैं तो मिट्टी पूरी तरह सिक्त हो जाती है। इससे मिट्टी की पूरी वायु निकल जाती है। इससे पौधों की जड़ें बढ़ नहीं पाती हैं। इस प्रकार की जल सिक्तता या जलमग्नता विशेषतया भारी तथा अप्रवेश्य मिट्टियों में पाई जाती है। वस्तुतः यह भारीपन बालू के अंश में वृद्धि से नहीं अपितु मिट्टी में मृत्तिका (चिकनी मिट्टी या क्ले) की अधिकता के कारण होता है। इस तरह मिट्टी की भौतिक दशा या मिट्टी संरचना का प्रभाव मुखर हो उठता है। कभी कभी कणाकार के अनुसार कुछ मिट्टियाँ भारी न होकर भी अच्छा जल निकास नहीं दिखातीं। यदि संयोगवश मृदा परिच्छेदिका में कठोर परत (pan) रहे तो भी ऐसी ही कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

मिट्टियों की अनुर्वरता का एक कारण उनकी खटास या अम्लता भी है। यह खटास कई तरह के कारणों से मिट्टी में उत्पन्न हो सकती है। विशेषतया जिन भागों का ताप कम रहता है, तथा वर्षा अधिक होती है वहां यह खटास उत्पन्न होती है। खटास से फसलों पर विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं का आक्रमण होता है। कभी कभी मिट्टी में घुलित लोह तथा एल्यूमीनियम की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि वह फसलों के लिए विषैली बन जाती है। कभी कभी कीट, रोग, बुरी जुताई, खरपतवार आदि के कारण फसलें नष्ट हो सकती हैं। ये आकस्मिक कारण हैं।

यही नहीं, अम्लता के कारण अनेक पोषक तत्वों में कमी आ सकती है। यदि मिट्टी में कैल्सियम की कमी हो तो फसलों की पत्तियों में चित्ती रोग प्रकट हो जाते हैं।

कभीकभी विलेय लवणों की अधिकमात्रा भी हानिकारक बन जाती है। विशेषतया क्षारीय तथा रेहीली मिट्टियों में ऐसा देखा जाता है।

इस तरह अनुर्वरता के लिए अनेक कारक जिम्मेदार हैं। फलस्वरूप मिट्टी बंध्या बन जाती है। जो मिट्टी प्रारंभ में कुमारिका थी, और आगे चलकर जो उर्वरा थी, वही बाद में बंध्या बन जाती है। अतएव उर्वरता मिट्टी का जन्मजात गुण होकर भी घटती बढ़ती रहती है।

पादप पोषण और उर्वरता

अनुमान है कि गेहूं की अच्छी फसल (45 क्विंटल/हेक्टर) मिट्टी से निम्नलिखित मात्रा में तीन प्रमुख तत्वों को ग्रहण करती है।

75 किलोग्राम नाइट्रोजन
35 किलोग्राम फॉस्फोरिक अम्ल
120 किलोग्राम पोटाश

संग्रहीत सूचना के अनुसार विश्वभर की मिट्टियों में कुल 15×10^{10} टन नाइट्रोजन प्राप्य हैं जब कि सारी वनस्पतियों में 1×10^{9} टन और पशुओं में 6×10^{7} टन नाइट्रोजन रहती है। समुद्रों में नाइट्रोजन 2×10^{3} टन होगी किन्तु वायुमंडल में 3.7×10^{15} टन नाइट्रोजन है। इन बृहत मात्राओं के भुलावे में न आकर हमें यह समझना होगा कि विश्वभर की मिट्टियों में नाइट्रोजन का क्या प्रतिशत है, और उसकी तुलना में भारत की मिट्टियों में कितनी नाइट्रोजन है? एक सूचना के अनुसार भारतीय मिट्टियों 0.03-0.06 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है। जबकि विश्व की मिट्टियों में यह प्रतिशत 0.02 से 2.5 प्रतिशत तक है। स्मरण रहे कि मिट्टी की ऊपरी परत में नाइट्रोजन अधिक रहता है और अवमृदा या नीचे की परत में कम 12.5 प्रतिशत नाइट्रोजन अत्यन्त उच्च मात्रा है जो पीट (जैव अंश से युक्त) मिट्टियों में ही प्राप्त है।

नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटेशियम, ये तीन महत्वपूर्ण तत्व त्रितत्व, पौधों की वृद्धि के लिए अत्यावश्यक हैं। इनके अतिरिक्त कैल्सियम, मैग्नीशियम, गंधक जैसे तत्वों की प्रचुर मात्राएं आवश्यक हैं। कुछ तत्वों की अत्यल्प (सूक्ष्म) मात्रायें पौधों के लिए आवश्यक हैं। ये 'सूक्ष्ममात्रिक तत्व' कहलाते हैं। इनकी संख्या 6 मानी गई है। वस्तुतः फसलों की वृद्धि के लिए जितने तत्वों की आवश्यकता होती है, उसका सही अंदाज पौधों की राख के संघटन से स्पष्ट हो जाता है। ऐसा पाया गया है कि पौधों की राख में सामान्यतः 33 तत्व पाए जाते हैं। किन्तु मृदा वैज्ञानिकों तथा सस्य विज्ञानियों का कहना है कि मिट्टी में जितने भी तत्व हैं, वे सभी पौधे के पोषण में काम आ सकते हैं।

लेकिन इन सभी तत्वों का आगार 'ह्यूमस' माना जाता है। यह ह्यूमस भूरेकाले रंग का पदार्थ है, जो मिट्टी में जैवपदार्थों के अपघटन से उत्पन्न होता है। इसके बनने में मृदा के सूक्ष्मजीव सहायक बनते हैं। कहा गया है कि जिस मिट्टी में जितना ह्यूमस होगा, वह उतनी ही उर्वर होगी। इसका कारण यह है कि ह्यूमस, जो एक प्रकार से जैव अंश है, पौधों के पोषक तत्वों को अवशोषित करके उन्हें आवश्यकतानुसार पौधों के लिए मुक्त करता रहता है।

ऐसा देखा गया है कि यौवना कुमारी मिट्टियों में जैव अंश की मात्रा काफी अधिक रहती है, किंतु उन पर खेती करते रहने से जैव अंश की मात्रा घटती जाती है। ऐसा पाया गया है कि प्रारम्भ के कुछ वर्षों तक जैव अंश में तेजी से उतार आता है किन्तु, बाद में यह क्षति मंद पड़ जाती है। इस प्रकार प्रायः 500-1000 वर्षों के बाद मिट्टी में जैवअंश स्थायी दशा को प्राप्त होता है, उसमें कोई उतारचढ़ाव नहीं आता।

रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि मिट्टी में प्राप्य जैव अंश में कार्बन के अतिरिक्त नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा गंधक पाया जाता है। सामान्यतया मिट्टी के जैवपदार्थ में 0.05 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.05 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा इतना ही गंधक पाया जाता है। इस प्रकार उस मिट्टी में (15 सेमी की गहराई तक) जिसमे 1 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ हों 1000 किलोग्राम नाइट्रोजन 100 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा इतना ही गंधक होगा। इतनी मात्रा तो कुछ ही फसलों में समाप्त हो जाए। किंतु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ह्यूमस में पोषक तत्वों को अवशोषित करके रखने की क्षमता है। इसीलिए इसे पोषक तत्वों का आगार कहा गया है। इतना ही नहीं, यह ह्यूमस मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को आश्रय देता है और मिट्टी की भौतिक दशा को सुधारता है। इन सारे गुणों के फलस्वरूप यदि मृदा विज्ञान के प्रारम्भिक काल में ह्यूमस को पौधों का भोजन मान लिया गया था, तो कोई आश्चर्य की बात न थी।

आजकल मिट्टियों में उच्च उपज वाली फसलें उगाई जाती हैं। वे मिट्टी से अपेक्षतया अधिक मात्रा में पोषक तत्वों का शोषण करती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ वर्षों के बाद मिट्टियाँ समुचित मात्रा में पोषक तत्वों की पूर्ति नहीं कर पातीं। इससे उपज में कमी आने लगती है। किसी भी पूंजी से यदि निरंतर खर्च ही खर्च हो और उसमें कुछ जमा न किया जाए तो पूंजी में ह्रास होना अनिवार्य है। यही हाल मिट्टी की उर्वरता का है।

जब इस तरह से उपज घटे तब यह खतरे की सूचना है। यहीं पर किसान को चौकन्ना

हो जाना चाहिए। और वह सचमुच सतर्क हो उठता है। वह मिट्टी की भाषा को जानता है, वह तुरंत निराई गुड़ाई करके, पाटा चलाकर, गोबर की खाद डालकर धैर्य से काम लेता है। उसने बहुत समय तक यही किया, उसे जो भी उपज मिलती रही, उससे संतुष्ट रहता रहा, किंतु सस्यविज्ञानी इतने से संतुष्ट रहने वाले जीव नहीं। उन्होंने उन पोषक तत्वों को, जिन्हें फसलें मिट्टी से शोषित करती रहती हैं, बाहर से मिट्टी में मिलाने की अभूतपूर्व खोज कर ली। इस तरह फसल के कारण मिट्टी में पोषक तत्वों की जितनी कमी होती है यदि उसकी पूर्ति कर दी जाए तो .भूमि पुनः उसी तरह उर्वर हो जाती है। इस तरह उर्वरकों की खोज हो लेने पर मिट्टी की उर्वरता की पुनर्स्थापना संभव हो गई। ऐसी उर्वरता 'अर्जित उर्वरता' कहलाती है। मिट्टी की अपनी निजी या प्रारम्भिक उर्वरता 'प्राकृतिक उर्वरता' है।

अर्जित उर्वरता एक तरह से उर्वरता में वृद्धि लाने वाले पदार्थों द्वारा ही संभव है। ये पदार्थ उर्वरक हैं। पहले किसान 'खादों' का प्रयोग करता था, ये प्राकृतिक पदार्थों से प्राप्त होती थी। ये स्थूल होती थीं, धीरेधीरे प्रभाव डालने वाली होती थीं। किन्तु इनके प्रयोग से उपज बढ़ती थी। लेकिन उर्वरकों के सूत्रपात तथा मशीनीकृत खेती के कारण खादों का प्रचलन घटा है।

विगत 150 वर्षों से उर्वरकों का प्रचलन हुआ है। 1840 ई. में सुप्रसिद्ध जर्मन रसायनज्ञ लीबिंग ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह घोषित किया कि मिट्टी में जिस तत्व की कमी हो जाए, यदि उसे मिट्टी में डाला जाए तो उपज में वृद्धि हो सकती है। इस तरह उसने फॉस्फोरस युक्त यौगिकों, विशेषतया हड्डी के उपयोग किए जाने पर बल दिया। सचमुच उसका प्रयोग सफल हुआ। इसका इतना प्रभाव हुआ कि वाटरलू के प्रसिद्ध युद्ध क्षेत्र में से सारी अस्थियाँ खोद ली गईं। लूट मच गई और शीघ्र ही अन्य स्रोतों की खोज की गई। ऐसी कहानी हैं उर्वरकों के सूत्रपात की। 'लीबिग' ने इसी आधार पर अपना सुप्रसिद्ध सिद्धान्त, 'खनिज सिद्धांत' चालू किया। मिट्टी की उर्वरता वापस लाने , उसे एक स्तर पर बनाए रखने तथा वांछित फसलें उगाने में उर्वरकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अब 'नाइट्रोजन' फॉस्फोरस तथा पोटाश से युक्त विविध प्रकार के उर्वरक देश में ही निर्मित होकर किसानों द्वारा प्रयुक्त हो रहे हैं। वस्तुतः 'हरित क्रांति' लाने में भूमिउर्वरता का उतना योगदान नहीं रहा जितना इन उर्वरकों का है।

सस्य वैज्ञानिकों का मत है कि अब वह समय नहीं रहा कि मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता पर निर्भर रहा जाए। जिस गति से विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है, उसके उदर पोषण के लिए जिस मात्रा में अन्न तथा अन्य कृषि उत्पादों की आवश्यकता होगी, उसकी पूर्ति तभी संभव है जब हम मिट्टी में उर्वरक डालें और कई फसलें उत्पन्न करें। यद्यपि मिट्टी दीन नहीं है, लेकिन दान भी दें तो कब तक और कितना। वह नहीं चाहती कि प्रतिदान ग्रहण करे, किन्तु मनुष्य की आवश्यकता बाध्य कर रही है कि वह प्रतिदान ग्रहण करे। जो धरित्री पहले "दो लेकर चार देती थी" वह अब चार से चार·नहीं दस देती है।

मृदा उर्वरता का मूल्यांकन

किसी भी देश में वैज्ञानिक रूप से नियोजित क्षेत्र परीक्षणों (Field Experiments) के आधार पर ही स्वस्थ एवं उपयुक्त उर्वरक विधियों का निर्माण होता है। हमारे देश में उर्वरता के मूल्यांकन के लिए 1881 ई. से कानपुर कृषि क्षेत्र में प्रयोग प्रारंभ हुए थे। ऐसे फार्म विश्वभर में स्थापित हैं। इंग्लैंड का रोथैम्स्टेड फार्म (1843) और अमरीका में इलिनाय (1876), पेन्सल्वेनिया (1880), मिसौरी, ओहायो के फार्म हैं।

हमारे देश में कई तरह की जलवायु है अतएव जलवायु तथा कृषि पद्धतियों को ध्यान में रख कर अनेक फार्म स्थापित किये गये हैं। उदाहरणार्थ,इंदौर में बारानी खेती के अंतर्गत मृदा उर्वरता में होने वाले परिवर्तन देखे जाते हैं, तो कटक और पश्चिमी बंगाल में धान की भूमि-उर्वरता का अध्ययन चल रहा है। कानपुर, कोयम्बटूर तथा पुराने पूसा में खादों के प्रयोग चल रहे हैं, पैडेगांव तथा शाहजहांपुर में गन्ने की फसल के अंतर्गत उर्वरता में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन चल रहा है। ऐसे परीक्षणों से एक ओर चेतावनी मिलती है तो दूसरी ओर आशा बँधती है।

उर्वरता का मूल्यांकन करने के लिए उपर्युक्त फार्मप्रणाली ही एकमात्र विधि नहीं है। किसानों के खेतों में, देश भर में, ऐसे परीक्षण चलाए जाते हैं। यही नहीं, प्रयोगशाला में नियंत्रित दशाओं में कांचघरों के भीतर मिट्टी के गमलों में असंख्य प्रयोग किए जाते हैं।

ऐसे प्रयोगों से जो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकले हैं वे इस प्रकार हैं:

1. वर्ष प्रतिवर्ष फसलें उगाने से मृदा उर्वरकता घटेगी अतः उसके अनुरक्षण की आवश्यकता है।
2. अम्लीय मिट्टियों में चूना डालने से उर्वरता क्षमता में 300 गुनी तक वृद्धि संभव है। सौभाग्य से हमारे देश में ऐसी अम्लीय मिट्टियों का क्षेत्रफल अधिक नहीं है।
3. केवल उर्वरक डालने की अपेक्षा यदि जैवउर्वरक (खादें) के साथसाथ कृत्रिम उर्वरक डाले जायें तो अधिक उपज मिलेगी। अच्छा हो कि चूना, खाद तथा उर्वरक इन तीनों का विवेकपूर्वक उपयोग हो। इंगलैण्ड में एक कहावत है "बिना खाद के चूना डालते रहने से मिट्टी तथा किसान दोनों निर्धन हो जाते हैं।"

हमारे देश के किसान तथा अन्यत्र भी भूमि उर्वरता बढ़ाने या स्थिर रखने के उद्देश्य से मिट्टी जलाते थे। मिट्टी का यह अग्नि दहन आज वैज्ञानिकों द्वारा समर्थित नहीं है किंतु इसके कुछ लाभ अवश्य थे। इनमें घासफूस एकत्र करके मिट्टी जलाई जाती थी। इससे खरपतावार नष्ट हो जाते थे, कीड़ों का विनाश हो जाता था और जली मिट्टी को पूरे खेत में छितराने से भी मिट्टी को लाभ पहुँचता था। हां, इस तरह जैवअंश के जलने से दोहरी क्षति होती थी—कार्बन जलने के साथसाथ नाइट्रोजन की भी हानि हो जाती है।

प्राचीन कृषि-पद्धति में परती डालने की भी प्रथा थी। इससे मिट्टी को विश्राम मिलता था और तिसाले, चौसाले चक्र में मिट्टी में जैवअंश बढ़ जाता था, तथा बहुत से हानिकारक कीट समाप्त हो जाते थे, वर्षा-जल का संचय हो जाता था।

□□

9

मिट्टी की रासायनिक संरचना

मिट्टी की उत्पत्ति भूपर्पटी से हुई। भूगर्भ विज्ञानियों ने भूपर्पटी में पाये जाने वाले तत्वों की प्रतिशत मात्रा ज्ञात की है। वह इस प्रकार है:

आक्सीजन	47.29	टाइटेनियम	0.33
सिलिकन	27.20	कार्बन	0.22
ऐल्यूमीनियम	7.81	नाइट्रोजन	0.21
लौह	5.46	फॉस्फोरस	0.10
कैल्सियम	3.77	मैंगनीज़	0.08
मैग्नीशियम	2.68	गंधक (सल्फर)	0.03
पोटैशियम	2.40	बेरियम	0.03
सोडियम	2.36	फ्लोरीन	0.02
		क्लोरीन	01

स्पष्ट है कि पर्पटी में आक्सीजन और सिलिकन की मात्रा सबसे अधिक है, उसके बाद एल्यूमिनियम तथा लौह की मात्रा आती है। कुछ तत्व अल्प मात्रा मे हैं। मिट्टी में भी ये ही सभी तत्व प्रायः इसी अनुपात में रहते हैं। मिट्टी अवयवों की रचना इन्हीं तत्वों से हुई है। इन सभी तत्वों का ज्ञान मिट्टी की 'रासायनिक संरचना' का द्योतक है।

मिट्टी की रासायनिक संरचना प्राथमिक या मूल शैलों की रासायनिक संचरना तथा

कार्बनिक पदार्थ की संरचना पर निर्भर करती है। मिट्टी मुख्यता सिलिका तथा सेस्क्वीआक्साइड से बनी होती है, इसे ही कभीकभी इस तरह कहा जाता है कि मिट्टी मूलतः एल्यूमीनो सिलिकेट है जिसमें विभिन्न पोषक तत्व अधिशोषित रहते हैं। इन कथनों से जो बात व्यक्त की जाती है, वह यह है कि मिट्टी में जिन प्रमुख तत्वो का प्राधान्य है वे सिलिकन, लौह तथा ऐल्यूमीनियम हैं। सिलिकन का आक्साइड 'सिलिका' कहलाता है और लौह तथा ऐल्यूमीनियम (इसके साथ मैगनीज तथा टाइटेनियम भी) के आक्साइड संयुक्त रूप में 'सेस्क्वीआक्साइड' कहलाते हैं। भूपर्पटी मे भी आक्सीजन, सिलिकन, ऐल्युमीनियम तथा लौह, इन चार तत्वों की प्रधानता है।

उपर्युक्त चार तत्वो के बाद मिट्टी में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, गंधक, पोटैशियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम आदि तत्वों की उपस्थिति पाई जाती है। इनके अतिरिक्त मिट्टियों का विश्लेषण करने पर अल्प मात्रा में सोडियम, मैंगनीज, टाइटेनियम, क्लोरीन आदि तत्व भी पाए जाते हैं। यहां तक कि बेरियम, आयोडीन, कोबाल्ट, ताम्र जैसे तत्व भी सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित रहते हैं। इधर विश्व भर में जो परमाणु परीक्षण हुए हैं उनके फलस्वरूप मिट्टियों में स्ट्रांशियम तथा सीजियम जैसे रेडियोधर्मी तत्वों का भी पता लगा है।

उपर्युक्त तत्वों की मात्रा में मिट्टी की उत्पत्ति, जलवायु तथा कृषि पद्धति के अनुसार काफी अंतर देखा जाता है। यही नहीं, मिट्टी की परिच्छेदिका में भी इन तत्वों की मात्रा में अंतर रहता है। तात्पर्य यह कि मिट्टी की रासायनिक संरचना न तो पूरी परिच्छेदिका में एक समान रहती है, न ही विश्व के विभिन्न भूखण्डों में। तो भी मृदावैज्ञानिकों को अंदाज रहता है कि अमुक भागों में, अमुक परिस्थितियों के कारण मिट्टियो की रासायनिक संरचना में इतना अंतर हो सकता है।

मिट्टी की रासायनिक संरचना के बल पर ही पौधे अपना आवश्यक पोषण प्राप्त करते है। मृदा उर्वरता के प्रसंग मे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम इन त्रितत्वों का उल्लेख हुआ है। मिट्टियों मे इन तीनों में से पोटैशियम की मात्रा एक प्रकार से अधिक है, जबकि शेष दो तत्वो का प्रतिशत बहुत ही कम होता है। जरा कल्पना करें कि इतने वर्षों से मिट्टियाँ इतनी अल्प पूंजी के होते हुए भी किस तरह फसलें उगाती चली आ रही हैं।

मिट्टी में 'नाइट्रोजन' की मात्रा ह्यूमस पर निर्भर करती है। 'ह्यूमस' मिट्टी के जैवअंश से सम्बंधित है। यह कालाकलूटा अंश न केवल नाइट्रोजन की पूर्ति करता है अपितु अन्य अनेक पोषक तत्वों को शोषित करके उन्हें यथासमय पौधों के लिए उपलब्ध कराता है। ह्यूमस ही मिट्टियों में कार्बन की उपस्थिति के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार अधिकांश मिट्टियों में ह्यूमस की प्रकृति के अनुसार कार्बन तथा नाइट्रोजन पाया जाता है। वैसे मिट्टी में कुछ नाइट्रोजन वायुमंडल की नाइट्रोजन गैस से दलहनी फसलों की जड़ग्रंथियों में उपस्थित होने के कारण प्राप्त होता है। वर्षा के समय वर्षा के जल में घुलित नाइट्रेटों से भी मिट्टी को थोड़ी नाइट्रोजन मिलती है।

यह 'नाइट्रोजन' मिट्टी की ऊपरी परत में कार्बन की अधिकता के कारण अधिक रहता है, किंतु ज्यों-ज्यों हम मिट्टी की निचली परतों में जाते हैं, नाइट्रोजन की मात्रा घटती जाती है। नीचे की परतों में नाइट्रोजन की अधिकता होने का एकमात्र कारण हो सकता है ऊपरी परत से नाइट्रेटों (नाइट्रोजन के यौगिक) का घुल कर नीचे पहुँचना। भारत की मिट्टियों में नाइट्रोजन की मात्रा कम है। इसका कारण इन मिट्टियों में जैव पदार्थ (ह्यूमस) की न्यूनता है, जो यहां के उच्च ताप के कारण है।

'फास्फोरस' भी अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। इसकी कुछ मात्रा जैव पदार्थ के साथ संयुक्त रहती है। वर्षा जल से इस तत्व की क्षति नहीं के बराबर होती है, अतएव अधिकांश फास्फोरस मिट्टियों की ऊपरी परत मे ही सीमित रहता है। नीचे की परतों में इसकी मात्रा घटती जाती है। भारत की अधिकांश मिट्टियाँ फास्फोरस न्यून हैं।

जैसा कि पहले कहा गया है मिट्टियों मे 'पोटैशियम' की प्रचुरता देखी जाती है। वर्षा द्वारा इस तत्व की क्षति बहुत कम होती है। भारत की बहुत कम मिट्टियों में इस तत्व की कमी पाई जाती है। आश्चर्य की बात तो यह कि उपर्युक्त तीनों तत्व पौधों के लिए अत्यावश्यक होने पर भी पौधों की राख में 1 प्रतिशत से अधिक नहीं होते।

पौधों के पोषण के संबंध में जिन सूक्ष्मात्रिक तत्वों की चर्चा की जा चुकी है, उनकी मात्रा भी मिट्टी में लेशमात्र ही होती है।

प्रायः कैल्शियम तथा मैग्नीशियम, ये दो तत्व मिट्टियों की पूरी परिच्छेदिका में पाए जाते हैं। कभीकभी तो निचली परतों में इनका जमाव (निक्षेप) पाया जाता है। इसका कारण

यह है कि वर्षा जल में कार्बनडाइआक्साइड घुल जाने पर वह इन दोनों तत्वों को उनके यौगिकों में से विलयित करके निचले परतों में पहुंचाती है। प्रायः अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में मिट्टियों की निचली परतों में ही कैल्सियम रहता है। विश्व की मिट्टियों के वर्गीकरण में कैल्सियम की उपस्थिति महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त सारे तत्व मिट्टी में, तत्व रूप में नहीं रहते हैं, अपितु विभिन्न यौगिकों के रूप में उपस्थित रहते हैं। इनमें से कुछ विलेय रूप में रहते हैं और अधिकांश अविलेय रूप में। विलेय रूप में प्राप्य यौगिक विलेय लवण हैं जैसे क्लोराइड, सल्फेट, फास्फेट, नाइट्रेट, बोरेट, ये इनमें क्रमशः क्लोरीन, सल्फर, फॉस्फोरस, नाइट्रोजन, बोरॉन के तत्व उपस्थित हैं। वस्तुतः पौधे इन्हीं विलेय लवणों को ग्रहण करते हैं। किंतु जिस रीति से पौधे मिट्टी में से पोषण तत्वों को ग्रहण करते हैं, वह जटिल है जिसके कारण तथाकथित अविलेय यौगिक भी विलेय बन जाते हैं।

मिट्टियों की यह रासायनिक संरचना उन्हें अम्ल द्वारा उपचारित करके, विलेय तथा अविलेय अंशों में प्रत्येक तत्व का निश्चय करके ज्ञात की जाती है। यह रासायनिक संरचना मिट्टी की कुल पोषण पूंजी को बताने वाली है।

ऐसे विश्लेषण के आधार पर लोग यह सोचने लगे थे कि यदि मिट्टी की ऊपरी 15-20 सेमी. परत में 0.1 प्रतिशत भी नाइट्रोजन रहे और इसके नीचे की परत में चाहे वह 0.04 प्रतिशत ही क्यों न हो तो इस नाइट्रोजन से कम से कम गेहूं की 70 फसलें ली जा सकती हैं और तब तक ऊपर से नाइट्रोजन डाले जाने की (उर्वरण की) कोई आवश्यकता नहीं होगी। किंतु शीघ्र ही यह देखा गया कि इस प्रकार से किया गया मिट्टी का समग्र रासायनिक विश्लेषण वांछित सूचना नहीं दे पाता। इसी तरह पोटैशियम तथा फॉस्फोरस तत्वों के विषय में भी देखा गया। अतएव ऐसा लगा कि मृदाविज्ञानियों द्वारा संपन्न मिट्टी के रासायनिक विश्लेषण सस्य-विज्ञानियों के लिए अधिक लाभप्रद नहीं सिद्ध हो सकते। उन्होंने देखा कि जिन मिट्टियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम तत्व न्यून मात्रा में थे, उनमें जो फसलें उगीं, वे बुरी नहीं थीं। इसी प्रकार ज़िनजिन मिट्टियो में इन तत्वों की मात्रा अधिक थी उनमें सदैव अच्छी फसलें नहीं हुईं। इस तरह यह समग्र रासायनिक विश्लेषण भूमि की उत्पादकता की पूरी कसौटी नहीं बन सका। ज्योंज्यों मृदाविज्ञान उन्नति करता गया। पूरी परिच्छेदिका के विश्लेषण

पर बल दिया जाने लगा। इससे मिट्टी के 'पोषक कोश' का पता लगाने में सहायता मिली। यही नहीं, परिच्छेदिका भर में तत्वों के वितरण के ज्ञान से मिट्टी के प्रकारों के निर्धारण (मृदा वर्गीकरण) में सरलता हुई।

उपलब्ध तत्व

यह देखा गया है कि मिट्टी की उत्पादन क्षमता कुछ तत्वों की उपलब्धि पर निर्भर करती है। पौधों को जिस मात्रा में तत्व उपलब्ध होते रहते हैं, वह उनकी 'उपलब्ध मात्रा' कहलाती है और जो-जो तत्व उपलब्ध होते हैं वे 'उपलब्ध तत्व' कहलाते हैं। वैसे जो तत्व जल में विलेय हैं (जल-विलेय लवण) वे एक तरह से उपलब्ध-तत्व हैं, किन्तु पौधे स्वयं अपनी जड़ों से अनेक कार्बनिक अम्ल उत्पन्न करके मिट्टी के अविलेय तत्वों को विलेय बनाकर उन्हें ग्रहण करते रहते हैं। इस तरह मृदावैज्ञानिकों ने अकार्बनिक अम्लों (नाइट्रिक या हाइड्रोक्लोरिक अम्ल) के साथ साथ कार्बनिक अम्लों (सिट्रिक, टार्टरिक, ऐसीटिक अम्ल) का भी प्रयोग मिट्टियों के निष्कर्षण के लिए किया। संयोगवश इनकी निष्कर्षण शक्ति जब पौधों की जड़ों की निष्कर्षण शक्ति के बराबर पाई गई तो उपलब्ध तत्वों की मात्रा ज्ञात करने के लिए कई प्रकार के अम्ल प्रयुक्त होने लगे। भूमि उर्वरता के अंतर्गत गमलों या खेतों में फसलें उगाने का जो उल्लेख हुआ है, वह उपलब्ध तत्वों की मात्रा ज्ञात करने की सार्व (Universal) विधियाँ हैं।

मृदा परीक्षण

प्रायः किसान आकर कहते हैं, "कृपया, मेरी मिट्टी की परीक्षा करके मुझे बतला दें कि मैं क्या कुछ करूं जिससे मुझे इस मिट्टी से अच्छी फसल प्राप्त हो सके? या कृपया यह बतावें कि मेरे खेत में अमुक फसल क्यों नहीं उगती है?"

वस्तुतः इन दोनों प्रश्नों का एकमात्र उत्तर है कि वह अपनी मिट्टी की जांच कराए। यह जांच "मृदा परीक्षण" या 'मिट्टी की जांच' नाम से अब विख्यात हो चुकी है। किसान, माली, आर्कीटेक्ट सभी मिट्टी की जांच पर बल देते हैं।

प्रारंभ में मृदापरीक्षण के लिए किसी एक संस्तुत विधि से मिट्टी के नमूनों के परीक्षण किए जाते थे और फिर आवश्यक उपचार बतला दिया जाता था। उदाहरणार्थ, शीतोष्ण प्रदेश की मिट्टियों का सबसे बड़ा दुर्गुण है, उनकी अम्लता (खटास)। इसके कारण इन मिट्टियों में ठीक से फसलें नहीं उगतीं और उनसे कम उपज मिलती है। अतएव प्रयोगशाला में ऐसी मिट्टियों की अम्लता ज्ञात करने के बाद उनमें सर्वप्रथम चूना डाले जाने की सलाह दी जाती रही है। इसके बाद ही उनमें उर्वरक डाले जाने की बात उठाई जाती। एक अन्य सामान्य संस्तुति यह की जाती रही है कि किसानों को चाहिए कि वे अपनी मिट्टियो में जैव अंश बढ़ावें। हमारे देश में पशुओं की खाद बड़े पैमाने पर उपलब्ध है, किंतु औद्योगिक देशों में गोबर का अभाव होने या चरागाहों के न होने से जैव पदार्थ जुटा पाने की समस्या आ खड़ी होती है। अतएव विदेशों में इस संस्तुति पर कोई अमल नहीं होता था।

जब से उर्वरक उद्योग में वृद्धि हुई और इन उर्वरकों का उपयोग कृषि उत्पादन के लिए चालू हुआ है, तब से उत्पादकों तथा किसानों में इन उर्वरकों के प्रति उत्सुकता बढ़ी है। व्यापारी अपना माल बेचने के लिए इच्छुक है और किसान भी अधिक उर्वरक खरीदना चाहता है बशर्ते कि उसे उर्वरक डालने से भूमि से अच्छा लाभ प्राप्त हो सके। इससे एक बात यह सामने आई है कि उद्योग यह जानने का इच्छुक है कि उर्वरक की वह उचित मात्रा क्या होगी जिससे फसलों को अधिकतम लाभ हो (हानि न पहुँचे)। किसान यह जानने का इच्छुक है कि उर्वरक की वह कम से कम मात्रा कितनी है जिससे वह अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सके। इन्हीं जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए मिट्टी की जांच या मृदा परीक्षण का कार्य चालू हुआ है। आज सारे विश्व के किसान मृदा परीक्षण को वरीयता प्रदान करते हैं, वे मिट्टी में त्रितत्वों की आपूर्ति के लिए ही मिट्टी की जांच कराते हैं।

लेकिन कुछ मिट्टी के जांचकर्ता (परीक्षक) इन तीन तत्वों के अतिरिक्त अन्य तत्वों की भी जांच मिट्टी में करते रहे हैं। अब तो तथाकथित सूक्ष्ममात्रिक तत्वों के विषय में भी आम जागरूकता उत्पन्न हुई है। यही नहीं, अनेक कीटनाशी, कवकनाशियों आदि के निरंतर प्रयोग होते रहने से मिट्टियों में आर्सेनिक तथा लेड (सीसा) जैसे विषैले तत्वों की जांच भी चालू हो गई है।

उर्वरता स्तर

परीक्षण-अधीन मिट्टी में ज्ञात किये गये तत्वों का तब तक कोई उपयोग नहीं किया जा सकता जबतक उनकी तुलना आदर्श मिट्टी से (जिसकी उत्पादकता ज्ञात होती है) न की जाय। इस तरह से मिट्टी परीक्षण से प्राप्त आंकड़ों को एक स्तर प्रदान किया जाता है। ऐसे तीन स्तर हैं— उच्च, मध्यम तथा निम्न। या कि श्रेष्ठ, उत्तम तथा निकृष्ट। 'उच्चस्तर' का अर्थ है, इसमें उपलब्ध तत्वों की प्रचुरता अतएव उर्वरक देने की आवश्यकता नहीं है। 'मध्यम स्तर' का अर्थ है कि यद्यपि इसमें उपलब्ध तत्व पर्याप्त हैं, किन्तु उर्वरक डाले जा सकते हैं और 'निम्न स्तर' का अर्थ है कि उपलब्ध तत्वो की मात्रा इतनी कम है कि बिना उर्वरक डाले फसलें नहीं ली जा सकतीं।

कभी-कभी उपलब्ध तत्वों की मात्रा किग्रा. / हेक्टर के रूप में व्यक्त की जाती है। उर्वरक की मात्रा भी इसी प्रकार किग्रा. / हेक्टर में संस्तुति की जाती है।

इन उपलब्ध तत्वो को ज्ञात करने तथा उर्वरता स्तर की घोषणा करने के उद्देश्य से कई प्रकार के कामचलाऊ 'परीक्षण किट' तैयार किए गए हैं, जिनसे तुरंत ही परीक्षण पूरा किया जा सकता है। ऐसे त्वरित परीक्षण (Quick Tests) की अमरीका में 1930-40 में बाढ़ आ गई थी। यद्यपि ऐसे परीक्षणों को न तो मृदा विज्ञानियों का समर्थन प्राप्त था, न ही वे इनके पक्ष मे थे तो भी सर्वसाधारण को मिट्टी परीक्षण उसी तरह आकर्षक लगे जिस तरह रोगी के लिए दवा के नुस्खे। किंतु जो लोग ऐसे परीक्षणों के विषय में डींग हांकते रहते थे उनके कथनों की कभी भी पुष्टि नहीं हुई।

थोड़े दिनों के बाद यह ज्ञात किया गया कि इन उर्वरता स्तरों का भी कोई अर्थ नहीं है क्योंकि जिन मिट्टियों में मृदापरीक्षण से पोटैशियम तथा फॉस्फोरस की अधिकता मिली थी उनमें भी पोटैशियम या फॉस्फोरस के उर्वरक डालने से अनुक्रिया मिली, अर्थात् उनमें उपज बढ़ी। मिट्टी में नाइट्रेट विषयक सारे परीक्षण बेमानी हो जाते हैं क्योंकि यह वर्षाजल या सिंचाई जल के साथ नीचे चले जाते हैं।

इस तरह मृदापरीक्षण से बहुत कम सूचना प्राप्त हो पाती है। इसके आधार पर मृद उत्पादकता का सही-सही मूल्यांकन हो पाना कठिन है। चतुर से चतुर व्यक्ति भी मृदा परीक्षण

से प्राप्त परिणामों से उन दावों की पुष्टि नहीं कर पाता जिनके लिए इन परीक्षणों का इतना प्रचार एवं विज्ञापन होता रहा है।

मृदापरीक्षण की इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह मृदाप्रक्रमों की गतिशीलता को तथा काल के साथ होने वाले अपक्षय पर ध्यान नहीं देती। ऋतु, जलवायु, जुताई तथा उर्वरण के अनुसार मिट्टी में जो-जो परिवर्तन होते हैं, उनके लिए इस परीक्षण में कोई स्थान नहीं है। उदाहरणार्थ वर्षा के पूर्व तथा वर्षा के बाद किए गए मृदापरीक्षण में भारी अंतर आ जाएगा। मृदा-परीक्षण पर सबसे बड़ा आरोप यही है कि यह मृदा परिच्छेदिका की स्थिति पर कोई विचार नहीं करता। इसमें केवल मिट्टी के ऊपरी स्तर (सतही) का परीक्षण किया जाता है। मृदाविज्ञानी इस तथ्य से परिचित हैं कि मिट्टी की ऊपरी 15-20 सेमी. सतह कभी भी मिट्टी की वास्तविक उत्पादकता को नहीं बता सकेगी। अतएव मृदा परिस्थितियों के सूचक के रूप में आजकल पौधों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मिट्टी का परीक्षण न करके पौधे का परीक्षण करते हैं। इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी के विषय में सूचना प्राप्त की जाती है। इस विधि से, यदि मिट्टीमें किसी तत्व की न्यूनता होती है तो फसल में कुछ विशिष्ट लक्षण दिखने लगते हैं जिन्हें "भूख के लक्षण" (Hunger Signs) कहते हैं। लेकिन कभीकभी ऐसा होता भी है कि कीटों के आक्रमण, वायु संचार न होने या कि तत्व विशेष की अधिकता से भी ऐसे लक्षण प्रकट हो आते हैं। इस प्रकार के विश्लेषण से तभी लाभ होता है जब पौधे में केवल उसी तत्व का अभाव रहे और शेष सारी मृदा परिस्थितियाँ समान हों। लेकिन जलवायु, जल, लवण की मात्रा में अंतर आने से भी अंतर देखे जाते हैं। पौधे की आयु के साथ भी उसका संघटन बदल जाता है। इसलिए कभी पौधा रस (Sap) को, तो कभी जड़ों को, अध्ययन का विषय बनाया जाता है।

मिट्टी में जीवाणुओं की उपस्थिति भी मृदा उर्वरता में सहायक बनती है। प्रायः ऐजोटोबैक्टर नामक जीवाणु की प्रचुर संख्या रहने पर मिट्टी में फॉस्फोरस की मात्रा पर्याप्त मान ली जाती है।

जिस प्रकार यदि मानव शरीर में सिर दर्द होता है तो उसका एकमात्र कारण स्थानीय ही नहीं होता। सिर दर्द का कारण कुपच, हार्मोन असंतुलन आदि भी हो सकता है। इसी

प्रकार जब तक मिट्टी को एक प्राकृतिक निकाय (शरीर) मान कर पूरी परिच्छेदिका का परीक्षण नहीं किया जाता तब तक केवल सीमित क्षेत्रफल में किसी गड़बड़ी का ठीक-ठीक पता नहीं चल सकेगा। ऊपरी सतह की अनियमितताओं का उद्गम निचले स्तरों में ढूंढना होगा।

सुप्रसिद्ध अमरीकी मृदाविज्ञानी जाफे का मत है कि मिट्टी एक रोगी की भांति है। उसके किसी भी रोग का पता न तो मिट्टी का नमूना लेकर उसकी त्वरित परीक्षा करने से लग सकता है, न ही किसी पौधे में प्रकट होने वाले न्यूनतम रोगों से। भले ही मृदाविज्ञानी भी डाक्टर की तरह कभीकभी रोगी को देखे बिना दवा दे दे, किंतु अधिकतर वह रोगी को देखना चाहेगा। वह यथास्थान मिट्टी की परीक्षा करना चाहेगा। यह परीक्षा अधिक विस्तृत होगी।

वह ऐसे परीक्षणों के लिये जल निष्कर्ष की परीक्षा, मिट्टी की गंध, मिट्टी के स्तरों के रंग, कणकार जड़ें-सबकी परीक्षा करेगा। ऐसे विस्तृत अध्ययन के लिए शोध कार्य की अपेक्षा रहती है। भूमि परीक्षण के लिए जो प्रयोगशालाएं बनी हैं उनमें विस्तार किये जाने की आवश्यकता है।

□□

10

राष्ट्र की थाती : मिट्टी

कभीकभी प्राकृतिक पदार्थों का अध्ययन करते समय उनको पहचान करके समूहों या वर्गों में रखने की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है। ऐसे पदार्थों को उनके गुणों तथा लक्षणों के आधार पर एकसाथ रखने की तर्कसंगत विधि 'वर्गीकरण' कहलाती है। यद्यपि वर्गीकरण कोई विशेष विज्ञान नहीं है किंतु विज्ञानियों की कार्यशाला के एक औजार का काम तो देता ही है।

प्रकृति की कोई ऐसी वस्तु जिसमें अनेक परिवर्तनशील गुण (विचर) हों तो उसका वर्गीकरण कठिन होता है। यदि इन विचरों (Variable) में भी सभी के अपनेअपने लक्षण हों तो इन्हें समूहों में रख पाना कठिन कार्य होता है। वस्तुतः मिट्टी ऐसी ही वस्तु है, ऐसा ही प्राकृतिक पिंड है। इसका उद्‌गम तथा निर्माण, इसका भौगोलिक वितरण तथा इसके शरीर की संरचना को प्रभावित करने वाले कारक—ये सभी विचर हैं, जिससे मिट्टियों का वर्गीकरण जटिल बन जाता है। साथ ही सबसे बड़ी उलझन की बात यह है कि वास्तविक मृदाविज्ञान के सूत्रपात के पूर्व भी कई प्रकार के वर्गीकरण प्रचलित थे जिनमें निरंतर संशोधन होते रहे और किसी नवीन प्रकार के वर्गीकरण का जन्म नहीं हुआ। प्रारंभिक प्रयासों में मृदा के प्राकृतिक शरीर के आंतरिक गुणों की अपेक्षा की जाती रही है। यदि मृदा वर्गीकरण करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया तो वह किसानों से मालगुजारी वसूलने के कारण ही हुआ।

रूप, रंग एवं कणों के विन्यास के अनुसार मिट्टियों में समानता अथवा अंतर का पाया जाना स्वाभाविक है। इस तरह जब समान गुणों वाली मिट्टियों को असमानगुणों वाली मिट्टियों से पृथक किया जाता है तो इसे 'भूमि या मिट्टी का वर्गीकरण' (मृदावर्गीकरण) कहते हैं।

मिट्टियों के वर्गीकरण के लिए न केवल मिट्टियों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों की सम्यक जानकारी आवश्यक है वरन् जिन दशाओं मे उनका विकास हुआ है उनकी जानकारी भी अपेक्षित होती है। यही नहीं, मिट्टियाँ आज जिस उर्वरता स्तर को प्राप्त हैं, और सस्योत्पादन की दृष्टि से उनकी जो उपयोगिता है उसका भी ज्ञान नितांत आवश्यक है।

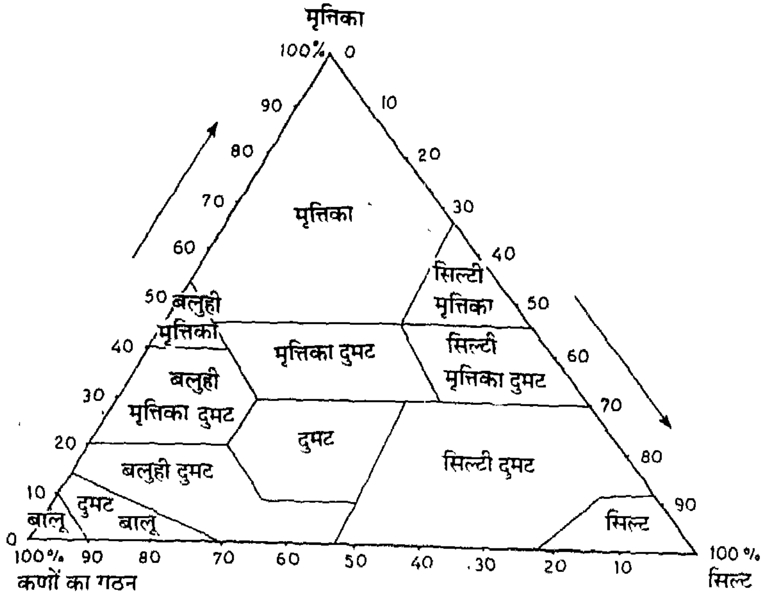
प्रारंभिक वर्गीकरण के लिए मिट्टियों के कणो के गठन या विन्यास के साथ साथ कृषि के लिए उनकी उपयोगिता का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके लिए भूमि का विधिवत सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। **भूमिसर्वेक्षण** का अर्थ है एक टोली या दल द्वारा स्थान स्थान पर जाकर मिट्टियों की परीक्षा के आधार पर मिट्टियों का वर्गीकरण एवं मिट्टियों का मानचित्र प्रस्तुत करना।

भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से कृषियोग्य भूमि का लेखा-जोखा होता आया है। कौटिल्य, खना, चरक, पराशर आदि मनीषियों ने भूमि का विभाजन भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया। 'कौटिल्य' ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में फसलों की अनुकूलता के अनुसार भूमियों का विभाजन तीन समूहों में किया:

1. नदियो की तलेटियाँ जो कद्दू, कुम्हड़ा उगाने के उपयुक्त हैं;
2. जलाक्रांत भूमियाँ जिनमें गन्ना, अंगूर उगाया जा सकता है;
3. नीची भूमियाँ जिनमें हरी फसलें उगाई जा सकती हैं।

'चरक' ने वनस्पतियो के अनुसर मिट्टियों को जंगल (शुष्क भाग), अनूप (गीले भाग), तथा साधारण (जहां पेड़,पौधे,लताएं,फूल उग सकें)—इन तीन वर्गों में विभाजित किया। 'पाराशर' ने मिट्टियों को उनकी स्वच्छता, उनके रंग तथा भौतिक गुणों के आधार पर पांच प्रकारो में विभाजित किया। ये थे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा मिश्र। 'खना देवी' ने फसलो के आधार पर मिट्टियों का वर्गीकर किया। 'घाघ' नामक एक लोक कृषिवेत्ता, जो अकबर के शासन काल में था, उसने मिट्टियों के वर्गीकरण एवं सर्वेक्षण पर बल दिया किंतु अकबर के मंत्री टोडरमल ने पहली बार सुनियोजित भूमि सर्वेक्षण का कार्य संपन्न कराया। उसने विभिन्न प्रकार की भूमियों में लगान स्थिर करने के लिए उनमे उत्पन्न होने वाली फसलों की पैदावार के कई वर्षों के औसत मान ज्ञात किये। अंग्रेजी शासनकाल में 1846 ई. में

वैज्ञानिक रीति से भूमिसर्वेक्षण का कार्य प्रारंभ हुआ। तब से आज तक की लंबी अवधि में काफी कार्य संपन्न हो चुका है। भूमिसर्वेक्षण के लिए हवाई सर्वेक्षण भी किए जाते हैं और अब तो सुदूर संवेदन की विधि से ऐसे भू-भागों का सर्वेक्षण संभव हो सका है जो पहले अत्यंत दुर्गम माने जाते थे। इस तरह से 32 प्रकार की मिट्टियाँ पहचानी गई हैं और उनका मानचित्र भी बन चुका है। भारत की मिट्टियों का पहला मानचित्र 1932 ई० में बना। उसके बाद विश्वनाथ तथा उकील ने 1944 में उसमें कुछ संशोधन किये, 1952 में पुनः डा. एस.पी. राय चौधरी द्वारा नवीन जानकारी के आधार पर परिवर्तन किए गए। अंत में डा. गोविंद राजन ने 1971 में पूर्ण मानचित्र प्रस्तुत कर दिया है जिसके आधार पर देश की मिट्टियों की रही-सही जानकारी उपलब्ध हो सकती है।



चित्र 23— कणों का गठन — मिट्टियों का यान्त्रिक विश्लेषण

हमने भौतिक गुणों के अंतर्गत मिट्टियों के कणाकार की चर्चा की है। उसी प्रसंग में किसानों के द्वारा स्पर्श या अनुभूति विधि द्वारा मिट्टी के बलुही, सिल्टी या चिकनी मिट्टी की परीक्षा किए जाने का उल्लेख हो चुका है। वास्तव में मिट्टी के कणों के आधार पर मिट्टियों के अनेक वर्ग किए जाते हैं यथा बलुही, दुमट बलुही, बलुही दुमट, दुमट (Loam), सिल्ट दुमट, सिल्टी (Silty), बलुही मृतिका, मृत्तिका (चिकनी मिट्टी)। यह नामकरण मिट्टी के कणाकार ज्ञात कर लेने के बाद उसकी यांत्रिक संरचना के आधार पर किया जाता है। मिट्टी में विभिन्न कणों की प्रतिशत मात्रा के अनुसार मिट्टी को उपर्युक्त नाम दिया जाता है। इसके लिए एक समत्रिबाहु त्रिभुज का सहारा लिया जाता है जिसके बाएं कोण की ओर 100 प्रतिशत बालू, दाएं कोण की ओर 100 प्रतिश सिल्ट तथा शीर्ष कोण की और 100 प्रतिशत मृत्तिका लिखा रहता है। फिर तीनों को समानान्तर रेखायें उन्हींउन्हीं बिंदुओं से खींच दी जाती हैं। इस तरह कामचलाऊ वर्गीकरण के लिए सुलभ विधि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार से ऊपर जिन वर्गों के नाम गिनाए गए हैं उनकी संख्या 12 निकलती है, और उनमें बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका का परास (Range) निम्न प्रकार होता है।

परास प्रतिशत

कणाकार के अनुसार मृदा वर्ग	बालू	सिल्ट	मृत्तिका
बलुही	85-100	0-15	0-10
दुमट बालू	70-90	0-30	0-15
बलुही दुमट	43-80	0-50	0-20
दुमट	23-52	28-50	7-27
सिल्ट दुमट	0-50	55-88	0-27
सिल्ट (मटियार)	0-20	80-90	0-12
बलुही मृत्तिका दुमट	45-80	0-28	20-35
मृत्तिका दुमट	20-45	15-53	27-40
सिल्टी मृत्तिका दुमट	0-20	40-73	27-40
बलुही मृत्तिका	45-65	0-20	35-45
सिल्टी मृत्तिका	0-20	40-60	40-60
मृत्तिका (चिकनी मिट्टी)	0-45	0-40	40-100

यदि मिट्टी के कण बालू से बड़े हों तो वे बजरी कहलाते हैं और उनसे युक्त मिट्टियां बजरीली होंगी। जब ये बजरियां बड़ा आकार धारण कर लेती हैं तो कंकड़ बनते हैं और वे मिट्टियाँ कंकरीली कहलाती हैं।

कंकरीली मिट्टियों में रंध्र बड़े-बड़े होते हैं, इसलिए ऐसी मिट्टियाँ खुली मिट्टियाँ कहलाती हैं। इनमें जल ग्रहण करने की शक्ति कम होती है, फसलें भी ठीक से नहीं होतीं। 'बलुही' या रेतीली मिट्टियों के कण कड़े होते हैं और उन्हें परस्पर बांधे रहने वाले संयोजक पदार्थों की कमी रहती है। इनकी जलग्रहण क्षमता भी कम रहती है। ये जल्दी गर्म तथा ठंडी हो जाती हैं। इनमें जुताई के यंत्र सरलता से चल सकते हैं अतएव ये 'हल्की मिट्टियाँ' कहलाती हैं।

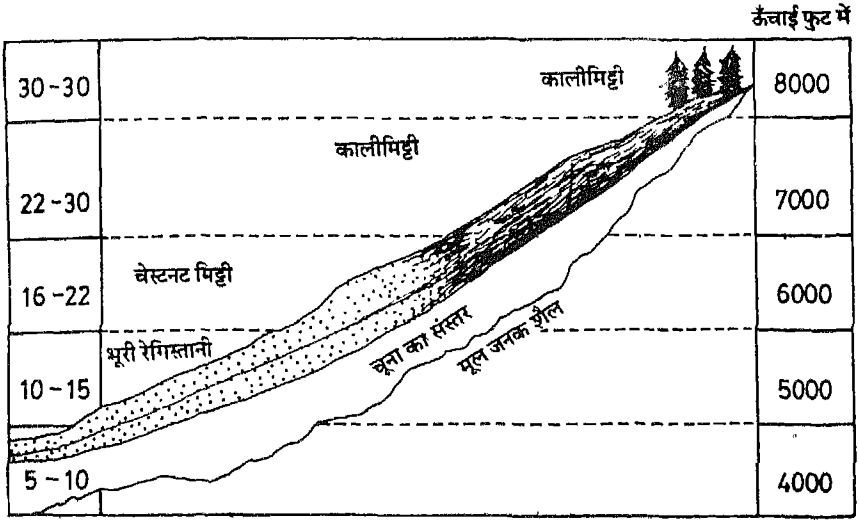
'दुमट' (Loam) में बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका कणों का एक उपयुक्त मिश्रण रहता है। यह छूने में कुछ दरदरी या किरकरी होने के साथ ही चिकनी भी होती है। यदि दुमट में बालू का अंश अधिक हो तो यह 'बलुही दुमट' कहलाती है। यदि मृत्तिका का अंश अधिक रहे तो वह 'मृत्तिका दुमट' कहलाएगी। वास्तविक शुद्ध दुमट में 56 प्रतिशत सिल्ट और 42 प्रतिशत बालू होनी चाहिए। कृषि कार्यों के लिए यह सर्वोत्तम मिट्टी है, क्योंकि इसमें जुताई के यंत्र सरलता से चल सकते हैं तथा इसमें जल एवं वायु धारण करने की क्षमता भी प्रचुर होती है। इसमें जैवअंश भी रहता है, अतएव इसकी उर्वरा शक्ति भी अच्छी होती है। किंतु जब दुमट में मृत्तिका का अंश बढ़ने लगता है, तो वह भारी होने लगती है और उसे 'भारी दुमट' कहते हैं। यह भी उर्वर मिट्टी है।

जब किसी मिट्टी में शतप्रतिशत सिल्ट हो तो उसे 'सिल्टी' या 'गाद' कहते हैं। सूक्ष्मकणों के कारण नम होने पर ये चिपचिपी बन जाती हैं और कृषि यंत्रों में चिपकती हैं। इनमें कणों के समुच्चयन से दानेदार संरचना बनती है। तथाकथित भारी मिट्टियाँ असल में मृत्तिकाएं या चिकनीं मिट्टियाँ ही हैं। इनके कण सबसे सूक्ष्म होने, तथा इनकी जल ग्रहण शक्ति सर्वाधिक होने से इनमें वायु का संचरण ठीक से नहीं हो पाता। गीली होने पर ये चिपचिपी होकर कृषियंत्रों में चिपकती हैं और सूखने पर इनमें बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। प्रायः ऐसी भारी मिट्टियों में जल निकास की समस्या उग्र रूप धारण कर लेती है, अतएव इनमें बालू या सिल्ट मिलाकर हल्की बनाने की सलाह दी जाती है।

कणाकार के आधार पर मिट्टियों का यह वर्गीकरण सुगम एवं सरल तो है, किंतु इसमें 'जैव मिट्टियो' (Organic Soil) को कोई स्थान नहीं प्राप्त होता। ये मिट्टियां जैवअंश में धनी होती हैं, (20 प्रतिशत या इससे अधिक)। इन्हें लगातार जोतते रहने पर इनके आयतन में कमी आती है जिससे ये नीचे की ओर धँसती जाती हैं। इनमें जल ग्रहण की क्षमता अपार है किंतु पोषक तत्वों का अभाव रहता है। ये प्रायः अम्लीय होती हैं जिससे चूना डालने की आवश्यकता पड़ती है। ये अत्यंत 'हल्की मिट्टियाँ' हैं। इनके रंग भूरे, काले, मिश्रितभूरे काले हो सकते हैं। इन मिट्टियों में अग्निकांड का भय बना रहता है। प्रायः तरकारियाँ उगाने के लिए इनका उपयोग होता है।

हमने कणाकार के आधार पर मिट्टियों के वर्गीकरण के एक दोष की ओर संकेत किया है। एक अन्य दोष भी है, वह यह कि विभिन्न जलवायु के अंतर्गत एवं पृथक-पृथक प्रक्रमों से विकसित मिट्टियों का कणाकार भले ही एकजैसा हो, लेकिन उन मिट्टियों में कोई समानता नहीं भी हो सकती है। अतएव इस प्रकार का वर्गीकरण किसी क्षेत्र विशेष के कृषकों के लाभ के लिए हो सकता है पर इसे दूसरे क्षेत्र की मिट्टियों पर लागू नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि मिट्टियों के वर्गीकरण की अन्य विधियों की खोज चलती रही। मृदाविज्ञान के विकास के साथ ही साथ मिट्टी के आनुवंशिक या उत्पत्तिमूलक वर्गीकरण (Genetic Classification) पर बल दिया जाने लगा। इसका आधार मृदापरिच्छेदिका का विकास तथा इसके गुणों की अभिव्यक्ति, इसके अवयवों जल, वायु, खनिज, जैवअंशों तथा उनके लक्षणों एवं गुणों का वर्णन बनाया गया। और यही तर्कसंगत वर्गीकरण है भी। इसका श्रेय सुप्रसिद्ध अमरीकी मृदाविज्ञानी 'सी.एफ. मार्बट' (1935) को दिया जाता है। उन्होंने मृदा निर्मायक प्रक्रमों के आधार पर विश्वभर की मिट्टियों को दो वर्गों में विभाजित किया। ये हैं: 'पेडोकेल' तथा 'पेडाल्फर'।

'पेडोकेल' वर्ग में मृदा परिच्छेदिका में कहीं न कहीं चूने के स्तर की उपस्थिति आवश्यक होती है जब कि 'पेडाल्फर' वर्ग में इसका अभाव रहता है। वस्तुतः यह वर्षा की मात्रा एवं मृदा परिच्छेदिका के निक्षालन की मात्रा का द्योतक है। तदंतर विश्वभर की मृदाओं को 36 मृदावर्गों में विभाजित कर दिया गया। किंतु अमरीका का मृदासर्वेक्षण विभाग विश्वभर में सर्वाधिक सक्रिय विभाग माना जाता रहा है। निरंतर सक्रिय रहने के कारण 1960 ई. में और



चित्र 24—वर्षा तथा ऊँचाई के अनुसार विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का निर्माण

फिर 1967 में अंतिम बार सप्तम संशोधित वर्गीकरण प्रस्तुत किया। यह "सेवेंथ एप्राक्सिमेशन" (सप्तम सन्निकटन) के नाम से विख्यात है। इसमें विश्वभर की मिट्टियो को 10 आर्डरों, 29 सब-आर्डरों एवं 100 बृहद वर्गों में रखा गया है। इस वर्गीकरण में एक ओर उत्पत्तिमूलक कारकों को ध्यान में रखा गया है, तो दूसरी ओर मिट्टी के वर्तमान उपयोग पर भी दृष्टि रखी गयी है। इसमें मृदा परिच्छेदिका में मिलने वाले विभिन्न स्तरों का अत्यंत सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है और कणाकार को भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जाता। यद्यपि हमारे देश का जो आधुनिक मृदा मानचित्र है उसमें 32 वर्ग की मिट्टियाँ प्रदर्शित हैं, किंतु भारतीय मृदा विज्ञानियों ने उन्हें इस नवीन वर्गीकरण के आधार पर भी व्याख्यायित किया है। इसके फलस्वरूप मृदाविज्ञानियों को विश्व की मिट्टियों को एक भाव से समझने में सुगमता होगी।

यह सच है कि जिस प्रकार मृदानिर्माण में जलवायु का प्रमुख हाथ है उसी प्रकार मिट्टियो में भौगोलिक वितरण भी प्रायः जलवायु का अनुसरण करता है। ऐसी मिट्टियाँ जो

समान जलवायु के प्रभाव से एकसमान विकसित हुई हैं 'मंडलीय' (Zonal) मृदाएं कहलाती हैं। किंतु कहींकहीं पर ऐसी मिट्टियाँ पाई गई हैं, जिन्हें जलवायु के अनुसार वहां नहीं विकसित होना चाहिए था। ऐसी मिट्टियाँ 'अंतरमंडलीय' या अंतरस्तर (Intra Zonal) कहलाती हैं। सुप्रसिद्ध मृदाविज्ञानी जाफे ने स्पष्ट कहा है कि आर्द्रता, स्थलाकृति, जनक पदार्थ तथा नदियों के बाढ मैदान, इन चार कारकों ने जलवायु को अपना वास्तविक कार्य करने से रोका है, जिसके कारण ये भिन्न प्रकार की अतंस्तर मिट्टियाँ बनी हैं।

जहां जल बाधक बना है वहां या तो वर्षा कम होती है या फिर जलमग्न अवस्था प्राप्त होती है। जलाभाव के कारण तथा लवणों के संचय से 'लवणीय' 'क्षारीय' या 'ऊसर' मिट्टियों का जन्म हुआ है। प्रायः विश्व के क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग में ऐसी मिट्टियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में ऊसर समस्यामूलक मिट्टियाँ हैं।

इसी प्रकार जलमग्न, दलदली स्थानो में 'पीट' या मक मिट्टियाँ पाई जाती हैं। नदी के डेल्टा भागों में, विशेषतया सुंदरबन तथा केरल के कुछ समुद्रीजल से मग्न भूभागों में ऐसी मिट्टियाँ मिली हैं। ये वस्तुतः जैव मिट्टियाँ हैं।

भारत वर्ष विशाल देश है जिसमें विविध प्रकार की जलवायु पाई जाती है, विविध प्रकार के शैल हैं, पर्वत हैं, घाटियाँ हैं। फलस्वरूप भारत की मिट्टियां विभिन्न शैलों से विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुई हैं। दक्षिणी भारत का भूगर्भीय इतिहास अति प्राचीन है। उत्तरी भाग में हिमालय पर्वत खड़ा है जो अवसादी शैलों से बना है और उसके नीचे विशाल मैदानी क्षेत्र है जो गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र नदियों की लाई गई मिट्टी से बना है। गंगासिंधु का मैदान पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल तक विस्तीर्ण है। यह सिल्ट तथा मृत्तिका के निक्षेपण से बना है। इस अवसादी निक्षेप की मोटाई कहीं 30 मीटर है तो कहीं 300 मीटर।

जलवायु के अनुसार भारत का कुछ अंश उष्णकटिबंध में है तो कुछ उपोष्ण भाग है। यहां का ताप पर्वतों पर शून्य डिग्री से कम रहता है तो रेगिस्तानी इलाकों में 120 डिग्री फा. तक उठ जाता है। वर्षा की मात्रा राजस्थान में 4'' (10 सेमी.) है तो असम तथा पश्चिमी घाटों में 450'' (1125 सेमी.) है।

भला ऐसे विलक्षण राष्ट्र की पृथ्वी या उसकी मिट्टी विलक्षणता से युक्त क्यों न होगी!

□□

11

मिट्टी की सुरक्षा

एक लेखक ने लिखा है कि सारा विश्व पृथ्वी की सतह के ऊपरी नौ इंचों पर स्थित है। इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। मिट्टी राष्ट्र की अनमोल थाती है। इसकी सुरक्षा हर प्रकार से की जानी है। वास्तव में भूमि की उर्वरता का जितना क्षय उसमें फसलें उगाने से होता है उसकी पूर्ति खादों-उर्वरकों के द्वारा सम्भव है किन्तु यदि स्वयं मिट्टी का क्षय होता हो तब क्या किया जा सकता है?

सामान्यतया ऐसा लगता है कि मिट्टी अचल है किंतु जल तथा वायु के द्वारा मिट्टी की क्षति होती रहती है, उसे अपनी जन्म स्थली छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसे ही भूमि अपरदन या भूमि कटाव कहा जाता है। भूमि के सशरीर स्थानांतरण के कारण उर्वरता भी विनष्ट होती है इसलिए भूमि अपरदन को मिट्टी का सबसे "भयंकर शत्रु' कहा गया है। यदि भूमि अपरदन के उत्पात को न रोका जाए तो राष्ट्र की अपार क्षति होती है। इसीलिए 'राष्ट्र की थाती' मिट्टी की सुरक्षा का प्रश्न आ खड़ा होता है। जिन उपायों से भूमि या मिट्टी की इस तरह की क्षति रोकी जाती है उन्हें 'भूमि-संरक्षण' (Soil Conservation) के नाम से पुकारते हैं।

सहसा विश्वास नहीं होता कि खेती करने की विधियों से भी भूमि का अपरदन बढ़ता होगा लेकिन होता ऐसा ही है। भूगर्भ विज्ञानियों का अनुमान है कि सामान्यतः पृथ्वी की सतह में से प्रति 200-500 वर्षों पर 1 इंच मिट्टी कट कर निकल जाती है किंतु खेती करने से इसमें वृद्धि ही होती है (यदि सुरक्षा के साधन नहीं अपनाये जाते)।

एक अनुमान के अनुसार भारत के कुल कृष्य क्षेत्रफल का 50 प्रतिशत* कुछ न कुछ अपरदन से प्रभावित है। यही नहीं, ऐसे अपरदन से मिट्टी की जितनी मात्रा की क्षति होती है, वह रोंगटे खड़ी कर देती है। प्रतिवर्ष प्रति एकड़ भूमि से 50 टन से 120 टन उर्वर मिट्टी अपने स्थान से कट कर दूर दूर तक चली जाती है।* ऐसे मे मुझे यह नहीं लगता कि तरुणी मिट्टी अपने मायके से ससुराल जा रही है प्रत्युत ऐसा मुझे लगता है कि यह मिट्टी का बलात् अपहरण हो रहा है। तरुणी "सुगठित* शस्य-श्यामला मिट्टी" विपदाग्रस्त है उसकी सुरक्षा आवश्यक है। यदि हम पृथ्वी या भूमि को माता मानकर चलें तो उसकी सुरक्षा हमारा परम कर्त्तव्य हो जाता है। उसकी सुरक्षा की आवश्यकता आज है, आगे भी रहेगी। अगली पीढ़ियो के द्वारा वह पूजित होती रहे, उसके लिए उसके स्वरूप को, इसकी गरिमा (उर्वरता) को बनाए रखना हमारा धर्म है। हमें भूमि के लुटेरो, अपहरणकर्त्ताओं, शोषकों का दमन करना ही होगा। मृदाविज्ञानी एवं भूमि संरक्षक कटिबद्ध है, जननी मिट्टी की रक्षा के लिए। उनके समक्ष ऐसे उदाहरण हैं जब अतीत में भूमि की रक्षा उसके नागरिकों द्वारा न किए जाने पर फूलती फलती घाटियाँ वीरान हो गई, सारी सभ्यताएं विनष्ट हो गईं। इतिहास ऐसे उदाहरणो से भरा पड़ा है। अफ्रीका, मध्यपूर्व अमरीका के उदाहरण हमारे सामने हैं। बेबीलोन, मिस्र तथा ग्रीस की उपजाऊ घाटियों का क्या हुआ? स्पष्ट है कि यदि राष्ट्र के निवासी मिट्टी की कदर नहीं करते तो न करें, मिट्टी भी उन्हें नष्ट कर देती है। जब हम गीत मे गाते हैं:

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा....
यूनान मिस्र रोमां सब मिट गये जहां से
अबतक मगर है बाकी नामोनिशां हमारा

तो मुझे लगता है कि अवश्य ही मिट्टी के प्रति हमारी आदर की भावना ने मिट्टी को अब तक सुरक्षित रखा है अन्यथा हम भी मिट गये होते।

यह सच है कि हमने कभी मिट्टी के साथ अत्याचार नहीं किया। लोभवश हमने उसका अतिदोहन या शोषण नहीं किया। हमने जंगलों के महत्व को समझा था। खेतों में गोबर की

---

*देश की कुल 32 8 करोड़ हेक्टर भूमि मे से लगंभग 14 करोड़ हैक्टर भूमि प्रतिवर्ष वायु तथा जल के कटाव से ग्रस्त होती है। इस तरह प्रतिवर्ष 7000 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बह जाती है।

खाद डालते थे। खेतों को हल से ही जोतते आये और साल में एक फसल, अधिक से अधिक दो फसलें लेते रहे। हमने गोचारण के लिए अलग भूमि छोड़ी। पर्वतों पर उगे जंगलो का सम्मान करते रहे। केवल आदिवासी या घुमंतू जातियाँ जंगलों को काट काट कर या जलाकर खेती करती रही। अंग्रेजी शासन के पूर्व तक इमारती लकड़ी के लिए जंगलों की बरबादी या कपास की लगातार फसलें उगाकर खेतों को अनुर्वर बनाने की कला से भारतीय अनभिज्ञ थे तो यह छिपा वरदान ही सिद्ध होता रहा, भूमि उर्वरता तथा भूमि सुरक्षा के लिए। यही कारण है कि हमारे देशवासियों को अपनी मातृभूमि एवं अपनी संस्कृति पर समान गर्व रहा है।

किंतु विकसित राष्ट्रों के अनुकरण पर हमने खेती की नई विधियाँ खोजी हैं और उनको व्यवहार में लाने के बाद अब अनुभव करने लगे हैं कि हमारी मिट्टियों में भी अपरदन बढ़ रहा है। अभी अधिक विलम्ब हुआ भी नहीं था कि हम सजग भी हो उठे है। यह शुभ लक्षण है। एक उदाहरण काफी होगा इस कथन के प्रमाणस्वरूप। पंजाब प्रांत के होशियारपुर ज़िले में सन् 1840 ई. में केवल 7 वर्गमील में भूमि अपरदन हुआ था किंतु 110 वर्ष बाद 1950 ई. में 700 वर्गमील में अपरदन पाया गया। कितने गुना विस्तार? कितनी लापरवाही? कितना गुमान? उन्नत कृषक होने का?

भूमि अपरदन की बात चल रही थी। जल और वायु दोनों को मिट्टी का लुटेरा कहा जा सकता है। वर्षा जल की मात्रा, बूंदों का वेग तथा बहने वाले जल का वेग, ये सभी अपरदन मे सहायक होते हैं। ज़ोर से वर्षा होने पर मिट्टी की सतह पर के कणसमूह नष्ट होकर तितर-बितर होने से वे पानी के साथ बहने लगते है। यदि वर्षा अधिक होती है और मिट्टी की भौतिक दशा ठीक नहीं रहती तो पानी की बन आती है। यदि खेत ढालू हुआ तो फिर क्या? मिट्टी के कण धुल कर खेत से बाहर नाली में, नाली से नालों और फिर नदियों में पहुंच जाते हैं और नदियों में आती है भीषण बाढ़। कणों के साथ ही पोषक तत्वों की भी क्षति होती रहती है। यदि मिट्टी के ऊपर वनस्पति का छाजन हो, या मिट्टी की सतह पर घासें उगी हों तो वर्षा की बूंदें मिट्टी के विन्यास को तोड़ नहीं पातीं क्योंकि घासों की जड़ें कणो को बांधे रहती हैं।

भूमि क्षरण तो मृदा निर्माण के समय भी चलता रहता है। इस तरह 4/10 टन मिट्टी/हेक्टर प्रतिवर्ष कटकर बहती रहती है। किंतु खेती करने से इस क्षति में वृद्धि होती जाती है। सामान्यत: 2-10 टन/हेक्टर मिट्टी की क्षति होती जाती है। इसके कारण मिट्टियों की गहराई घटती जाती है। इस तरह उनकी गहराई 1/2-1/4 तक रह जाती है।

वास्तव में मिट्टियों में जैव अंश की कमी होने और मिट्टियों के खुले रहने के कारण जल अपरदन उग्र रूप धारण करता है। ऐसा कभी सोचा ही नहीं जा सकता कि मिट्टी पर वर्षा नहीं होगी। वर्षा तो होगी ही अतएव किसानों को जल अपरदन से मिट्टी की सुरक्षा भी करनी ही होगी। खेतों मे मेड़ें, बड़े-बड़े बांध बाँधकर वर्षा जल को रोक कर मिट्टी की क्षति को रोका जा सकता है। समतल भूमि की अपेक्षा ढालो पर जल अपरदन की उग्रता को रोकना अत्यावश्यक है। सामान्य रूप से पहाड़ों के ढालों पर जितने जंगल उगे रहते हैं यदि उन्हें काटा न जाए, या इन क्षेत्रों में अंधाधुंध जानवरों को चरने न दिया जाए तो भूमि अपरदन न्यूनतम हो। किंतु विभिन्न परिस्थितियों के अंतर्गत जंगलों से लकड़ी काटनी पड़ेगी और ढाल पर खेती भी करनी होगी क्योंकि पर्वतों पर भी लोग रहते हैं। यदि इन ढालों में खेती करनी ही है तो सीढ़ीदार खेत बनाए जाएं, भले ही धन का अपव्यय क्यों न हो। 'राष्ट्र की थाती' मिट्टी के बचाने के लिए धन तथा जन दोनों न्यौछावर करने होगे। मैदानी इलाक़ों में कुछ विशेष कृषि पद्धतियों का पालन करना होगा यथा फसलचक्र अपनाना होगा और जहां वर्षा कम होती है वहां शुष्क खेती या बारानी खेती करनी होगी। इसके द्वारा वर्षाजल को संचित करके तब दो वर्ष या तीन वर्ष में एक फसल ली जा सकती है। वैसे आजकल शुष्क खेती का स्वरूप बदल चुका है।

हम चाहें जो भी कृषि पद्धति अपनाएं उसमें घासों को वरीयता दें और वनरोपण को महत्व प्रदान करें। विशेषतया पहाड़ी ढालों पर वनरोपण द्वारा भूमि अपरदन रोका जा सकता है।

रेगिस्तानी इलाक़ों में वायुअपरदन की विनाश लीला देखते बनती है। हवा के बगूल (धूल भरी आँधी) उठते हैं तो मिट्टी के कण आसमान की ओर उठ जाते हैं। धूल भरी आँधी वस्तुतः वायु अपरदन की सूचक है। इससे मरूस्थलों के आसपास के उपजाऊ क्षेत्रों में महीन बालू पट जाती है जिससे फसलें नष्ट हो जाती हैं। प्रायः लोग कहते रहते हैं, रेगिस्तान बढ़ रहे हैं। यह कोरी गप्प नहीं है। सचमुच रेगिस्तान बढ़ सकते हैं यदि वायु अपरदन को रोकने का प्रयास नहीं किया जाता। घासें उगाना, वृक्ष लगाना, ये ही उपाय हैं रेगिस्तान के प्रसार को रोकने के।

लेकिन भूमि-संरक्षण भूमि की क्षति रोकने के उपायों तक ही सीमित नहीं है। मिट्टी में लवणों को एकत्रित होने से रोकना, बंजर तथा अनुर्वर भूमि को उपजाऊ बनाना, बारानी खेती

करना, जैव खादों का उपयोग करना, वृक्ष लगाना, ये सारी बातें भी भूमि संरक्षण के ही अंग है।

हमारी केंद्रीय सरकार ने सन् 1953 से भूमि संरक्षण का कार्य चालू किया, एक भूमि संरक्षण बोर्ड की स्थापना की और देहरादून, कोटा, बड़ौदा, बेलारी, उटकमंड, आगरा, चण्डीगढ़ में भूमिसंरक्षण संबंधी अनुसंधान एवं प्रदर्शन केंन्द्र स्थापित किए हैं। इससे आशा ही नहीं विश्वास है कि भूमि अपरदन पर रोक लगेगी।

हमने देखा कि मिट्टी उड़ सकती है, मिट्टी बह सकती है। उसके कणों को बांधने के उपाय किए जाने हैं, एकता में शक्ति होती ही है। सुरक्षा की जानी है पहाड़ी मिट्टियों की, सुरक्षा की जानी है मरुस्थली मिट्टियों की। सुरक्षा होनी है ऊसरों की। मिट्टी की सुरक्षा हमें कार्यों के द्वारा करनी है, नारों से नहीं। सुरक्षा करनी है मिट्टी में शहरी उद्योगों के अपशिष्टों तथा मलवे के मिलते रहने से जिससे उसकी काया मैली न हो। मिट्टी की सुरक्षा प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है क्योंकि यह उसके जीवन का, भोजन का प्रश्न है।

□□

12

मिट्टी की मैली काया

कृषि की उन्नति के नाम पर मनुष्यों ने जंगलों का सफाया करते हुए अधिकाधिक क्षेत्रफल में खेती करने का प्रयास किया है और सभी प्रकार की वनस्पतियों को अनुपयोगी समझते हुए उनका विनाश किया है। चाहे शहरो का कूड़ाकरकट हो, या मलमूत्र, सब मिट्टी में डाला जाता रहा, लेकिन इसकी कभी किसी ने चिन्ता नहीं की कि मिट्टी पर उसकी क्षमता से अधिक बोझ तो नहीं पड़ रहा!

वैज्ञानिकों ने मृदाविज्ञान को जिस प्रकार विकसित किया है उससे यह स्पष्ट हो गया है कि मिट्टी मृत नहीं, उसका अपना जीवंत संसार है। मिट्टी भी सांस लेती और सूक्ष्मजीवियों सहित उसमें समस्त गंदगी को विनष्ट करने की एक निश्चित क्षमता है। यदि वाह्य साधनों से यथा नाना प्रकार के जीवनाशियों (Pestecides) के प्रयोग से उसकी क्षमता घटाई जाती है तो मिट्टी में गंदगी घटने के बजाए बढ़ेगी और उसका दुष्प्रभाव मनुष्यों के स्वास्थ्य पर पड़ेगा।

मृदा उस विराट पर्यावरण (Environment) का महत्वपूर्ण अंग है जिस पर समस्त प्रकार का प्रदूषण हो रहा है। चाहे वायुप्रदूषण हो या जलप्रदूषण, इन सब में मृदा भी सहभागिनी है। इसलिए मृदा धीरेधीरे जल या वायु की अपेक्षा प्रदूषण की संभावना से अधिक संत्रस्त है। उसे ऊष्मीय प्रदूषण (Thermal pollution) या नाभिकीय प्रदूषण (Nuclear pollution) भी समस्त रूप से आतंकित कर रहे हैं। फिर मिट्टी अपने प्रदूषण को अपने तक ही सीमित न रखकर उसे वनस्पतियों में स्थानान्तरित करती है और वनस्पतियाँ अपनी पारी में पशुओं तथा मनुष्यों में, यह चक्र निरंतर चलता रहता है। धुआं, गर्द, सड़न, ये सदा मिट्टी से चिपके रहे हैं।

प्रकृति कभी नितांत स्वच्छ नहीं रही। सभ्य मनुष्य उसे जितना ही स्वच्छ करना या देखना चाहता है, प्रकृति उतनी ही गंदी होती जा रही है। सृष्टि के प्रारंभ से यही होता रहा है लेकिन इधर जिस गति से औद्योगीकरण हुआ है, उसके कारण मिट्टी पर प्रदूषण बढ़ा है। आज मिट्टी वह विश्वजनीन रद्दी की टोकरी (Universal sink) बन चुकी है जिसमें सभी प्रकार का रद्दी माल फेंक दिया जाता है बिना यह सोचे समझे कि आखिर इसका क्या होगा?

प्रदूषण ही प्रदूषण

कोई भी ऐसा पदार्थ, चाहे सजातीय हो या विजातीय, जो मृदातंत्र में मिलकर भूमि की उत्पादकता को प्रभावित करे, मृदाप्रदूषण (Soil pollutant) है। प्रदूषकों के कारण उत्पन्न स्थिति जो सामान्य से भिन्न होती है, 'प्रदूषण' कहलाती है। यह संतुलन के विनाश या अस्थिरता की सूचक है। प्रदूषित मृदा प्राणियो को हानि पहुंचाती है तथा/अथवा मृदा में ही परिवर्तन आता है। यह धनात्मक प्रदूषण (Positive Pollution) है। लेकिन इससे भी भयावह प्रदूषण वह है जिसमें स्थालाकृति मे **रद्दोबदल** होता है। यह किसी साधनस्रोत के अत्यधिक उपभोग या निष्कासन से होता है। इसे ऋणात्मक प्रदूषण (Negative pollution) कहते हैं। भूमि अपरदन (Soil erosion) ऐसा ही मृदा प्रदूषण है जो अत्यधिक पशुचारण एवं वनस्पति के विनाश से उत्पन्न होता है। मरुस्थलो की उत्पत्ति का एकमात्र ऋणात्मक प्रदूषण है।

मृदा के प्रसंग में एक तीसरे प्रकार का भी प्रदूषण देखने को मिलता है। सम्पन्न देशों में अपने घरों को स्वच्छ रखने की होड़ में न केवल घर का कूड़ाकरकट बल्कि धातु के टीन, प्लास्टिक के डिब्बे, काँच की बोतलें, प्लाटिस्क के थैले, अखबार— सभी ठोस रद्दी (Solid waste) खेतों में फेंक दी जाती है। यह धनी वर्ग की मानसिकता से उत्पन्न प्रदूषण है। इसे तृतीय प्रदूषण (Third pollution) कहा गया है। स्मरणीय है कि अमरीका का प्रत्येक नागरिक प्रति वर्ष 250 किलोग्राम कागज प्रयोग करके फेंकता है। आखिर यह सब कूड़ा कहां जाए?

यह उल्लेखनीय है कि मृदा का प्रदूषण, वायु प्रदूषण या जल प्रदूषण से इस बात में भिन्न है कि वह स्थानिक है जब कि वायु प्रदूषण या जल प्रदूषण सार्वभौम है। यद्यपि एक

खेत की मिट्टी से दूसरे खेती की मिट्टी में प्रदूषण होता है लेकिन ऐसा कम ही होता है। इसलिए मृदा प्रदूषण* स्थानीय कहा जाता है, लेकिन यह विश्व भर की किसी मृदा में हो सकता है

वायुमंडल से प्राप्त प्रदूषकः विभिन्न औद्योगिक नगरों में वायुमंडल से जितना धूलिकण गिरता है उसका स्रोत कारखानों में जलाया जाने वाला ईंधन है अथवा फिर वह वायुक्षरण के कारण दूरदूर से लाए गए मिट्टी के महीन कण होते हैं। लेकिन विश्व में निरंतर नाभिकीय आयुधों की बाढ़ के कारण विस्फोटों की संख्या बड़ी है। इनसे जो रेडियोसक्रिय पदार्थ निकलते है वे मिट्टी के अवयवों के साथ अभिक्रिया करके उसी में अंतर्विष्ट हो जाते है। ऐसे प्रेक्षण प्राप्त हैं जिनमें धूलकणों के रूप में Sr^{90} (स्ट्रांशिम^{90}) मिट्टी की सतह पर संचित होता है। किंतु यदि विलयन में से अवसाद द्वारा Sr^{90} ग्रहण होता है तो उसकी सांद्रता में 90 गुनी वृद्धि हो जाती है। अतः जलोढ़ मिट्टियाँ रेडियोसक्रिय आइसोटोप ग्रहण करके घातक बन सकती हैं। एंडर्सन का कथन है कि यदि ऐसी मिट्टियों में फॉस्फेट उर्वरक का प्रयोग हो तो ग्रहण किये हुए Sr^{90} की मात्रा कम रहती है किंतु नाइट्रोजनी उर्वरक से यह मात्रा बढ़ती है। इसी प्रकार अम्लीय मृदाओं में से फसलों के द्वारा Sr^{90} का अवशोषण बढ़ जाता है। पौधों से Sr^{90} पशुओ तथा मनुष्यों में पहुंच जाता है। हमारे देश में कृषि कार्यों के लिए नाभिकीय ऊर्जा का प्रयोग होना है, अतः मृदाप्रदूषण संबंधी समस्याओं पर पहिले से ही निगाह रखनी होगी।

औद्योगिक अपशिष्टः विभिन्न उद्योगों से मुख्यतः तीन प्रदूषक प्राप्त होते हैं—सल्फर डाइ ऑक्साइड (SO_2), फ्लोराइड तथा भारी धातुएं। सल्फर डाइ आक्साइड वायु प्रदूषण में सब से अधिक महत्वपूर्ण है लेकिन मृदाप्रदूषण में भी इसकी भूमिका कम नहीं है। सल्फर डाइ आक्साइड से मिट्टियों में अम्लता बढ़ती है। स्वीडन, डेनमार्क, जर्मनी तथा बेल्जियम में औद्योगिक पट्टियों की मिट्टियाँ अम्लीय हो चुकी हैं। अनुमान है कि 50 साल बाद अधिकांश मिट्टियों में से पोषक तत्व निकल चुके होंगे और वे अम्लीय हो चुकी होंगी। यही नहीं, नदियों तथा झीलों का पानी तक अम्लीय हो गया है। फ्लोराइड मृदा के साथ अभिक्रिया करके

---

*टिप्पणीः कभी कभी मृदा प्रदूषक का काम करती है। (जैसे जल या वायु के साथ मिलकर) किन्तु अधिकांशतया यह प्रदूषकों का विनाश करती है और एक सीमा के बाद स्वयं प्रदूषित हो जाती है।

अवक्षेपित होता है और जब मात्रा बढ़ जाती है तब जल तथा पौधों में भी इसकी विषैली मात्राएं प्राप्त होने लगती हैं।

विभिन्न उद्योगों से ताम्र, कैडिमियम, पारा जैसी भारी धातुएं भी मृदाप्रदूषण बढ़ाने में सहायक होती है। कारखानो में कोयला जलने से बहुत सी उड़न राख प्राप्त होती है जिससे मिट्टी का प्रदूषण बढ़ता है।

कृषि अपशिष्ट तथा अन्य कूड़ाकरकट: यद्यपि सभी कूड़ाकरकट मृदा की उर्वरता बढ़ाने वाला होता है किन्तु तभी, जब उसकी ठीक से कंपोस्ट बना ली जाय। लेकिन इतना सारा कूड़ा ढोकर ले जाने और उसका ठीक से उपचार करने में काफी श्रम एवं धन लगता है। फिर इस कूड़ाकरकट में बहुत सा अंश ऐसा होता है जो ठोस रूप में होने के कारण विघटित नहीं हो सकता। विकासोन्मुख देशों में शहरी लोग प्रायः प्रत्येक अनावश्यक वस्तु रद्दी की टोकरी में फेंककर अपने घर की सफाई कर लेते हैं। किंतु इस ठोस कूड़े से अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। घरेलू या औद्योगिक कूड़े मे डिटरजेंट, बोरेट, फास्फेट तथा लवण इतनी मात्रा में रहते है कि मिट्टी मे पहुंचने पर वे मिट्टी की उर्वरता पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

पनालों का जल या वाहितमल शहरों के निकट सब्जी पैदा करने के लिए काम आता है, किंतु लगातार प्रयोग करते रहने से मिट्टी की भौतिक दशा बिगड़ जाती है, उसके रंध्र अवरुद्ध हो जाते हैं और मिट्टी में अनेक बीमारियाँ घर कर लेती हैं। फिर यदि जल में कीटनाशी मिले हों या भारी धातुएं प्रविष्ट हो जाएँ तो स्थिति और भी गम्भीर बन जाती है।

देहातों मे पशुओं का गोबर तथा मूत्र गंदगी का प्रमुख स्रोत है किंतु यदि इन्हें कंपोस्ट के रूप मे डाला जाए तो ये भूमि की उर्वरता बढ़ाते हैं। उन्नत देशों में जहां पशु उद्योग संगठित हैं और बड़ेबड़े डेरी फार्म हैं वहां की स्थिति गंभीर है। विशेष रूप से पशुओं का मलमूत्र उठाना दुष्कर हो रहा है, जिससे प्रदूषण बढ़ा है।

यंत्रीकृत देशों में कृषि के अवशेष भी उग्र समस्या बन चुके हैं क्योंकि मशीनों के उपयोग के कारण सारा पुआल, डंठल, पत्तियां सभी कुछ बच रहता है। हां, कम विकसित देशों में इसका कुछ अंश पशुओं को खिला दिया जाता है। हमारे देश मे चावल मिलों के

आसपास धान की धूसी के ढेर हाते हैं, चीनी मिलों के आसपास गन्ने की खोई तथा शीरा फैले रहते हैं। इनसे प्रदूषण बढ़ता है। इसी प्रकार कागज की मिलों मे और कृषि उद्योगों के अपशिष्ट भी उग्र रूप धारण कर चुके हैं। अनुमान है कि प्रतिवर्ष 25000 टन फलों तथा तरकारियों का अपशिष्ट निकलता है। पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी ग्रामीण क्षेत्रों मे मृदाप्रदूषण बढ़ा है। आंकड़े बताते है कि भारत भर का कुल अपशिष्ट दो अरब टन होता होगा जिसका लेशमात्र भी कृषि में प्रयुक्त नहीं हो पाता, यह मृदाप्रदूषण बढ़ाता है।

लवण: हमारे देश मे ऊसर तथा लवण से युक्त मिट्टियों की भरमार है। इनकी उत्पत्ति लवणो के अत्यधिक संचय के कारण हुई है जो लवणसंपृक्त सिंचाई जल या भूमि जल से बच रहते हैं। लवण एकत्र होने से भूमि की भौतिक दशा खराब हो जाती है, उसमे से होकर वर्षा का जल नीचे नहीं जा पाता और अंत में फसलें नहीं उग पातीं। भूमि संरक्षण केअंतर्गत मृदा के ऐसे प्रदूषण की रोकथाम पर ध्यान दिया जाता है।

जीवनाशी: अधिक अन्न उपजाने के लिए अनेक प्रकार के जीवनाशियों का अंधाधुंध व्यवहार हुआ है। इनमे आर्गेनोक्लोरीन यौगिक एवं आर्गेनोफॉस्फेट विशेष उल्लेखनीय हैं। डी.डी.टी. तथा उसी के समान कुछ यौगिक मिट्टी में मिल जाने पर काफी अवधि तक उसमें बने रहते है। उनका यह दीर्घ स्थायित्व ही मृदाप्रदूषण का कारण बनता है। इससे उगने वाली वनस्पति में क्रमशः डी.डी.टी. की मात्रा बढ़ती जाती है जो पशुओं और मनुष्यों के लिए घातक बन जाती है। इस दृष्टि से आर्गेनोफास्फेट जीवनाशी कम हानि कारक है क्योंकि ये कुछ सप्ताह से अधिक मिट्टी में नहीं टिक पाते, उनका जल्दी विघटन हो जाता है। डी.डी.टी. का प्रभाव नाइट्रोजन की उपलब्धि पर भी पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि छिड़काव के लिए प्रयुक्त डी.डी.टी. का 75 प्रतिशत मिट्टी में गिर जाता है और वहीं वह संचित होता रहता है। इस डी.डी.टी. से मिट्टी मे रहने वाले जीव नष्ट हो जाते है। कुछ जीवनाशियों का दीर्घ स्थायित्व इस प्रकर है: टैक्सोफेन 6 वर्ष, हेप्टाक्लोर 9 वर्ष, डी.डी.टी. 10 वर्ष, बी.एच.सी. 11 वर्ष, 2-4-5 टी 6 मास, सिमैजीन 17 मास, और पेराथियान, मैलाथियान तथा फॉस्फैमिडान 1 से 4 सप्ताह।

उर्वरक तथा अन्य प्रदूषक: नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस उर्वरक उपज बढ़ाने वाले हैं किन्तु यदि मिट्टी मे इनकी मात्रा अधिक हो जाती है तो ये पानी में घुलकर जलस्थानों, तालाबों तथा झीलो मे पहुचते है और उनका जल बेकार हो जाता है। उनमे वनस्पतियाँ बढ़ जाती हैं जिससे घुली आक्सीजन घट जाती है और जल में रहनेवाली मछलियाँ दम घुटने के कारण मर जाती हैं।

पनालों के जल में डिटर्जेंट की भारी मात्रा घुली रहती है। विशेष रूप से शहरों के पास की मिट्टियो में जल के साथ इनकी प्रचुर मात्रा पहुँचती है। वैडले नामक वैज्ञानिक का अनुमान है कि अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रतिवर्ष 5 अरब पौड डिटर्जेंट प्रयुक्त होते है। इनमे फॉस्फोरस की प्रचुर मात्रा रहती है। लेकिन मिट्टी के लिए इनमें प्रायः सोडियम अंश ही घातक है।

सीसा, पारा, कैडमियम, ऐसी भारी धातुएं हैं जो मानवमात्र के लिए घातक हैं। सीसा गेसोलीन अर्थात पेट्रोल का प्रमुख अवयव है और आज के औद्योगिक जगत में मोटरें, कारें आदि की निकास गैसें वायुमंडल में न जाने कितना सीसा फेकती है। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि जो मिट्टी सड़क से जितनी निकट होगी उसमें सीसे की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। पारा अनेक कवकनाशी यौगिकों का अवयव है, साथ ही कागज मिलों से निकले अपशिष्टों में भी इसकी काफी मात्रा रहती है। पारा भी मिट्टी में संचित होता है। ये तत्व मृदा की ऊपरी सतह मे एकत्र होते हैं जिनका प्रभाव वनस्पति और जीवों पर पड़ता है।

मृदाप्रदूषण से बचने या प्रदूषण कम करने के लिए कुछ उपाय सुझाए गए हैं, जैसे कूडाकरकट जला देना, उसकी कंपोस्ट बनाना, पशु चारा बनाना आदि। लेकिन मृदा वैज्ञानिको की दृष्टि में मिट्टी में जैव अंश की मात्रा बढ़ाकर जीवनाशी विषालुता नियंत्रित की जा सकती है। इसी प्रकार अम्लीय मिट्टियों से चूने का प्रयोग करके नाभिकीय विघटन उत्पाद Sr^{90} के अवशोषण पर रोक लगाई जा सकती है।

किंतु चाहे हम जो भी उपाय करें, मृदा के जीवाणुओं की सक्रियता यथावत बनाये रखना आवश्यक है। इनमें एक निश्चित सीमा तक गदगी (प्रदूषण) विनष्ट करने की क्षमता है, उससे अधिक होनेपर निष्क्रिय हो जाते है। अतः मृदाप्रदूषण के निवारण के लिए मृदास्वास्थ की समुचित देखरेख करनी आवश्यक होगी।

यदि हमने मिट्टी की काया को मलिन देखने की धृष्टता का है ता म बहकाने के लिए नहीं, वास्तविकता के प्रति सचेष्ट करने के उदेश्य से ही। उसकी काया को स्वच्छ रख पाना विश्वपर्यावरण के प्रति निगरानी रखने के बाद ही संभव है। अभी हमारा देश विकास के पथ पर है। हमारे देश में मिट्टी के प्रति जागरूकता भी है अतएव हम मिट्टी की काया को मलिन होने से बचाएँ। हमारे द्वारा मिट्टी का यही मोल अनमोल होगा।

आइए एक बार फिर हम पृथ्वी सूक्त को दुहराएँ:

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

□□